

**THE BOOK WAS  
DRENCHED**

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_194573**

UNIVERSAL  
LIBRARY



# भ र ली घा ग र [ स्फुट कविता ]

कवयित्री  
लक्ष्मी बाई टिळक  
संपादक  
देवदत्त नारायण टिळक



\* ७२ \*

---

मूल्य तीन रुपये

सर्वाधिकार संपादकाच्या स्वाधीन

प्रथमावृत्ति १९५१

मुद्रक

बा. ग. ढवळे,  
कर्नाटक मुद्रणालय,  
चिराबाजार, मुंबई २

प्रकाशक

केशव भिकाजी ढवळे,  
श्रीसमर्थ-सदन,  
गिरगाव, मुंबई ४

पुष्कळ वर्षांपासून करीन करीन म्हणत होतो ते काम आज हातावेगळें होत आहे म्हणून फार आनंद वाटतो. आज विसाव्या शतकाच्या उत्तरार्धाला आरंभ होत आहे. ह्या कविता एकोणिसाव्या शतकाच्या उत्तरार्धातील असल्या तरी त्याच्यात चालू काळांतील नावीन्यही आहे असे वाटल्याने व त्यातल्या-त्यात कित्येक मित्रांचे उत्तेजन मिळाल्याने हे लहानसे पुस्तक वाचकांच्या हातीं देत आहे. 'स्मृतिचित्रे,' 'खिस्तायन' व आतां 'भरली घागर' अशीं तीन मोठाली पुस्तके माझ्या ह्या अडगणी पण प्रेमळ मातेने लिहिलीं हे पाहून धन्य वाटते आईच्या इतर पुस्तकाचा केला तसाच ह्याचाही स्वीकार वाचक करतील अशी आशा आहे

ह्या पुस्तकात ठिकठिकाणीं जीं स्पष्टीकरणे दिलेली आहेत, त्यापैकी माझ्या हातचीं जीं आहेत त्यांत मीं कवयित्रीचा उल्लेख 'आई' असा केला आहे. काहीत तिचा उल्लेख लक्ष्मीबाई असा आहे तो माझ्या ज्या मित्रानीं मला ह्या कामीं साहाय्य केले त्याच्या हातचा आहे व काहीं खुद्द कवयित्रीच्या हातचा आहे अशा वेळीं टीपेच्या खालीं ल ना टि. अशी अक्षरे आहेत.

देवदत्त नारायण टिळक

नासिक, १ जानेवारी, १९५१

# अनुक्रम

पृष्ठ

पृष्ठ

## ग्रन्थप्रसिद्धीपूर्वीचे दोन अभिप्राय

- १ प. वा. प्रा. २ श्री जोगळेकर,  
एम्. ए. १  
२ प्रा. भ. श्री. पंडित, एम्. ए. ११

## १. कवि आणि काव्य

- १ काव्यकळी २४  
२ कल्पना, विचार, शब्द २५  
३ जळगांवच्या कविसंमेलनास  
निरोप २६

## २. पहिल्या कविता

- १ अगदी पहिली कविता २९  
२ काम आणि प्रेम ३०

## ३. आत्मपर

- १ लक्ष्मीनारायण संगम ३२  
२ श्रीमती ३३  
३ गाडं कोणत्या परीं ३५  
४ चिमुकलें बालक  
माझ्यापुढें ३६  
५ ना फूल ना पाकळी ३८

## ४. स्त्री-पुरुष

- १ करंज्यांमध्ये मोदक  
कशाळा ? ४१  
२ पतिपत्नी ४३

## ५. सामाजिक टीका

- १ बहिष्कृत याळा आर्षी  
करा ५८  
२ बाटली ६१  
३ झानासाठीं ६१  
४ रामासि बाट नाही ६२

## ६. वात्सल्य

- १ वसंत ६५  
२ मुलाचें म्ळानमुख पाहून ६६  
३ एकुलत्या मुलाचा  
वाढदिवस ६७  
४ दलित तुजला देतें ६८  
५ उपदेश-आशीर्वाद ६९  
६ चिमुकल्या ! बोल ! ७०  
७ मी तुझी मावशी तुला  
न्यावया आलें ७२

## ७. नातवंडे

- १ फुलबाग ७४  
२ सिंहगड ७५  
शि शु गी तें  
३ उंदीरमामा-माऊ मावशी ७८  
४ गाय ७९  
५ पोपट ७९  
६ कावळा ८०

|                               | पृष्ठ |                         | पृष्ठ |
|-------------------------------|-------|-------------------------|-------|
| ७ भगवाई! हैं काय ?            | ८१    | ११. भक्तिभाव            |       |
| ८ चिमणी                       | ८१    | १ बरे हैं झालें         | १०६   |
| ९ गेंडा                       | ८२    | २ ही रसना               | १०७   |
| १० टिपण्यांचा खेळ             | ८२    | ३ कारागीर               | १०८   |
| ११ अंक                        | ८३    | ४ ऊठ माझ्या जिवा        | ११०   |
| ८. प्रासंगिक                  |       | ५ अमृत विषाचे कुंभ      |       |
| १ कुमारी सीता                 | ८५    | मजपुढें                 | १११   |
| ९. संकीर्ण                    |       | ६ शांतिसदन              | ११३   |
| १ धुंधुर्मासाची खिचडी         | ८८    | ७ प्रभुपाळणा            | ११४   |
| २ ज्याच्या त्याच्यापुढें तोंड |       | ८ देवाला शरण जाणें      | ११५   |
| वेंगाडणे                      | ९८    | ९ अभंगाअलि              | ११६   |
| ३ तीळगूळ                      | ९९    | १२. राष्ट्रीय           |       |
| १०. रूपकात्मक                 |       | १ तुजवर सारा जीव        | १३५   |
| १ नवरा                        | १०१   | २ कारागृह               | १३६   |
| २ सबत                         | १०३   | ३ बिरडें सोडा           | १३७   |
| ३ सासुरवास                    | १०४   | ४ स्मरा आपुल्या गुरुवरा | १३८   |
|                               |       | ५ पुढें सरणार           | १३९   |
|                               |       | ६ जागा रे               | १४०   |
|                               |       | ७ वंदे मातरम्           | १४१   |
|                               |       | १३. खिस्तायन            | १४२   |





## पहिल्या ओळींची अनुक्रमणिका

|   |         |
|---|---------|
| १ अनुभूतीच्या घनांधकारी.                    | २३      |
| २ अर्भगाञ्जलि                               | ११६-१३४ |
| अश्रुंचा विटाळ नको नयनांला                  | १२९     |
| आमुचा तो बाप, आम्हां काय कमी                | १२२     |
| ऊठ वेढ्या जीवा करी देवघेव                   | १३१     |
| कन्या मी लाडकी देशी भातकूली                 | १२७     |
| चंदनाचा जन्म पर्वतावरती                     | ११८     |
| चंद्र सूर्य ग्रह तारे । आम्हां शिकवीती सारे | १२४     |
| जीवा तळमळ मुखा नाहीं खळ                     | ११९     |
| तुला भेटावया नको नांव गांव                  | १३३     |
| तूं माझा सागर सान मी घागर                   | १३०     |
| देवा जग वाटीकेंत दया ताटवे फुलूं दे         | १२७     |
| नाहीं आवंतालें चालुनीया आळे                 | १२०     |
| पाळीलें पोशीलें, वत्सा वाढवीलें             | १२३     |
| बालपणीं आई गेली तेव्हां                     | १२१     |
| मना हूरहूर, सदा चिंतातूर                    | १३२     |
| मी तो चाकर मोलाची                           | १२८     |
| रडक्यांच्या माथां सदा पायपोस                | १२४     |
| वसंत ग्रीष्माळा सदा येतें हांसू             | ११६     |
| वेळोंवेळीं चिंता खेळे छुपापाणी              | १२६     |
| वेढ्या माझ्या जीवा कंठी परदेश               | १३०     |
| सर्व तूझे हीरे, सर्व हीरकण्या               | ११८     |
| सेवा संपतांना नांवाढ्या तो गोळा             | १२५     |
| संकटें बापूडी काय तूजपूढें                  | १२२     |
| संवसार केला, जीव पाखडीला                    | १२०     |
| संसारिं एकळी आजवरी होतें                    | १२८     |
| हृदयकासारीं तुडुंब हें जग                   | १२८     |

|                                    |     |
|------------------------------------|-----|
| ३ आज मीं नवल पाहिलें               | ६६  |
| ४ आतां ऊठ माझ्या जिवा              | ११० |
| ५ ऊठ जीवा प्रार्थि देवा            | १४१ |
| ६ एके दिवशीं सिंहगडाचें चित्र      | ७५  |
| ७ काम बोलतो प्रीतिलागुनी           | ३०  |
| ८ काय गडे डोंगर चालत येत पुढे      | ८१  |
| ९ कारागृहिच्या रम्य स्थलाला रामराम | १३७ |
| १० खडबड उठुनी लगबग जाशी            | ७८  |
| ११ खरें सांग मे ताई अपुल्या        | ४३  |
| १२ खरोखर राष्ट्र पुढें आले         | १३६ |
| १३ खिस्तायन                        | १४३ |
| १४ गा गा गाणें म्हणतां मजला        | ३५  |
| १५ गाणे माझ्या अवडीचे              | २५  |
| १६ गुणरूपानें मनासारखा             | १०१ |
| १७ गिरिच्या शिखरा सोडुन फों फों    | ३२  |
| १८ घडवंचीवर काय ठेविली गादीची      | ८२  |
| १९ घर अपुलें हें स्वच्छ करा        | १३८ |
| २० चला गडे घेउन पाळ्या लिहूं       | ८३  |
| २१ चला चला हो बंधु भगिनियो         | ६१  |
| २२ चातका तूं दे लक्ष ऐक माझे       | ९८  |
| २३ जागा रे जागल्यांनो              | १४० |
| २४ जाशी आतां दूर लाडके             | ६८  |
| २५ दुःखार्णवि मी बुडतां बुडतां     | ३६  |
| २६ दुध, दही, लोणी                  | ७९  |
| २७ दे दे हें वरदान, दयाळा          | ११३ |
| २८ धांवपळिमधें दिवस पळाला          | ८८  |
| २९ नच हिंदपुत्र डरणार              | १३९ |
| ३० नरनारी संगम जिकडे तिकडे         | ४१  |
| ३१ नाहीं तूं जवळीं म्हणून          | ९९  |

|    |                                     |     |
|----|-------------------------------------|-----|
| ३२ | निशा संपतां उषा ये पुढें            | १३८ |
| ३३ | नीरशा दुधांत पल्लिकापतन             | ११२ |
| ३४ | प्रभु तूं ये रे ये । लवलाही         | १०७ |
| ३५ | पाठोंपाठीं । अवदशा घेउनी काठी       | ८१  |
| ३६ | पाहार्टे-चिउताई ही जलदि उठे         | ८१  |
| ३७ | बरें तरि झालें प्रभुपार्यी .        | १०६ |
| ३८ | बोल गडे तूं बोल                     | ७०  |
| ३९ | मी दीन जाहलें लीन                   | ११५ |
| ४० | म्हणे जातो सोडून नाथ .              | २९  |
| ४१ | येती भावत कल्पना .                  | ३८  |
| ४२ | ये घे देतें आशीर्वचना ...           | ६९  |
| ४३ | वाढ वाढ बाळा, मातेचा .              | ६७  |
| ४४ | वाल्ह्यास मुनि बनाया ...            | ६२  |
| ४५ | शान्तिप्रीती मैत्रिणी जोडबाई        | ६९  |
| ४६ | श्रीमती नांव मज आलें ... ..         | ३३  |
| ४७ | सकाळीं उठोनी तुझी कावकाव ..         | ८०  |
| ४८ | सखी ही कविता सोडुनिया जातां ..      | ३२  |
| ४९ | सखि रात्रंदिन छळित मला ..           | १०३ |
| ५० | स्वर्गाची देवता । कुमारी तूं सीता . | ८५  |
| ५१ | सासुरवासी मी जन्मापासुन ऐसी         | १०४ |
| ५२ | सोडूं व्यसनें तोडूं बंधन... ..      | १३५ |
| ५३ | हलवी मना । प्रभुपाळणा ... ..        | ११४ |
| ५४ | हा गालीचा सांग कुणी बनवीला ... ..   | १०८ |
| ५५ | हा असा धरोनी तुला चुंबितें .        | ६५  |
| ५६ | हिरण्या हिरण्या तरुवरीं ... ..      | ७९  |
| ५७ | ही काव्यतरुची छाया ...              | २६  |
| ५८ | हीं मुलें वेळिवर फुलें ...          | ७४  |
| ५९ | हिंदमाय ही गाय अभागी                | १३७ |
| ६० | ही भरली घागर तुझ्या शिरावर . . .    | ७२  |



## ग्रंथप्रसिद्धीपूर्वीचे दोन अभिप्राय

आईच्या चरित्रांत पुष्कळ विलक्षण गोष्टी घडलेल्या आहेत. त्यांतच पुस्तकप्रसिद्धीच्या आधीच त्या पुस्तकावर दोन अभिप्राय प्रसिद्ध झाले ही एक म्हणावी लागेल. प. वा. प्रा. र. श्री. जोगळेकर ह्यांचा अभिप्राय ता. १७ एप्रिल १९३७ म्हणजे ह्या पुस्तकाची जुळणी करीत असतां, बरोबर दहा वर्षांपूर्वी आणि प्रा. भ. श्री. पंडित ह्यांचा तर ध्यानीं मनीं नसतां ता. १७ एप्रिल १९४७ रोजी, सर्व जुळणी जवळ जवळ संपली असतां पाहाण्यांत आला ! ते दोन्ही अभिप्राय येथे देत आहे.

— १ —

( प्रो. आर एस. जोगळेकर एम. ए. नाशिक )

कवीच्या काव्यात जीवन भरलेले असते, तर संताच्या जीवनात काव्य फुललेले असते. परंतु ज्याप्रमाणे कमळानें तळ्याला व तळ्यानें कमळाला शोभा यावी त्याप्रमाणे संत कवीच्या जीवनाला काव्यमय घटनानीं व काव्याला जीवनविश्लेषणानें सौंदर्य प्राप्त होतें. श्रीमती लक्ष्मीबाई टिळक यांच्या काव्यजीवनामध्ये असाच अन्योन्य भूषणभूष्यभाव आहे. त्यांच्या स्मृतिचित्रावरून त्यांच्या जीवनाची अद्भुतरम्यता मनात भरते व त्यांच्या काव्यांत जिवंतपणाचा तजेला दृष्टीस पडतो.

मानवी जीवनपट सुखदुःखाच्या धाग्यांनीं विणलेला आहे. याबुद्धे हें सुखोद्गीत आणि दुःखोद्गीत असें द्विविध असतें. दुःखोद्गीत हें सुखोद्गीत काव्याइतकेंच किंबहुना अधिकच चित्तवेधक असतें. सकृद्दर्शनीं विक्षिप्त बाटणाऱ्या या विधानाची सोपपॉत्तिक चर्चा करण्याचें हें स्थळ नव्हे. सध्यां आधारासाठीं एकच वचन उद्धृत करितों.

“ Our sweetest songs are those,  
that tell of saddest thought. ”

श्रीमती लक्ष्मीबाईंचें प्राथमिक काव्य दु खोत्पन्न आहे व तें चित्तस्पर्शी उत्तरले आहे.

श्रीयुत नारायण वामन टिळकाच्या लहरी स्वभावामुळे श्रीमती लक्ष्मीबाईंना संसारांत स्थैर्य असे मिळालेंच नाही. पुढे तर श्रीयुत टिळक धर्मांतर करणार असा गवगवा सुरू झाला हिंदु संस्कृतीचें वळण, वडील माणसाचा कर्मठपणा व तेव्हाचा गतानुगतिक काळ एवढ्या गोष्टी लक्षात घेतल्या, कीं या वेळीं श्रीमती लक्ष्मीबाईंच्या मनाची काय स्थिति झाली असेल याची कल्पनाच केलेली बरी पतीने धर्मांतर करणें म्हणजे पत्नीने पतीला मुकणेंच ! अशा हृदयद्रावक परिस्थितीत श्रीमती लक्ष्मीबाईंच्या काव्याचा जन्म झाला.

दारुण दु खानें सामान्य माणसाचें मन मुकें बनतें, परंतु प्रभावशाली अंतःकरणास वाचा फुटते. मूकाला वाचाल करणें हा जमा परमेश्वराचा तसाच दुःसह दु खाचाहि धर्म आहे. दुर्दम दु खानें डोळ्यातील अश्रु जळून जात असतील; परंतु संतप्त अंतःकरणाचा कोलाहल स्फोटरूपाने बाहेर पडतो. श्लोकाचें रूप घेऊन श्लोक स्फुरूं लागला कीं त्यालाच आपण काव्य म्हणतो. तोडलेल्या तरूचा रसस्त्राव संपून त्यास धुमारे फुटावयास विलंब तरी लागतो; परंतु प्रशांत जलाशयात दगड फेकतांच क्षणकाल पाणी खालावतें व तात्काळ जगूं धैर्यानें उंचावतें. कविमनाचा हाच धर्म आहे. श्रीमती लक्ष्मीबाईंच्या मनाची घडण अशाच प्रकारची होती त्या लिहितात, “ माझ्या मनाची ठेवणच अशा प्रकारची आहे, कीं सर्व निराशामय अंधकारातून चाचपडत चाचपडत, धडपडत, का होईना पण आपला मार्ग आक्रमावयाचा. मध्येंच म्हणून प्राण सोडावयाचा नाही थोडक्यात म्हणजे रबरी चेडूसारखें आहे माझें ”

श्रीमती लक्ष्मीबाई कोठल्याहि शाळेंत शिकलेल्या नाहीत. इ. स. १८९२ च्या सुमारास त्याची पहिल्याने अक्षरओळख झाली व त्यानीं

पहिली कविता १८९४ त लिहिली. यावरून काव्य स्फुरावयास व्याकरण यावयास पाहिजे असें नाहीं असें वाटूं लागते व “कवित्व हें नव्हे टांकसाळी नाणें ” या उक्तीची आठवण होते.

इ. स. १८९४ त टिळक धर्मांतर करणार अशी निश्चयात्मक वार्ता कळल्यावर स्वतःच्या अगतिक स्थितीची जाणीव होऊन श्रीमती लक्ष्मी-बाईंच्या तोंडून अकस्मात् जे उद्गार श्लोकस्वरूपांत बाहेर पडले ते हे—

“ म्हणे जातो सोडून नाथ माझा ।  
अतां कोणाला बाहुं देवराजा ।  
सर्वव्यापी सर्वज्ञ तूंचि आहे ।  
सांग कोणाचे धरूं अतां पाये ॥ ”

वरील श्लोकांत ललितरम्य पदविन्यास नसेल, परंतु त्यांत अंतः-करणाची आर्तता व्यक्त झाली नाहीं अमे कोणत्या सद्बुद्ध माणसास वाटेल ? उत्कट भावनाचा उत्स्फूर्त ओघ म्हणजे काव्य. ( “ Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings ! ” )

या काव्याच्या कसोट्यास उतरणाऱ्या वरील ओळी आहेत.

श्रीयुत टिळकांचें धर्मांतर १८९५ च्या फेब्रुवारी महिन्यांत झालें. यानंतर कांहीं काळ तरी श्रामती लक्ष्मीबाई यांच्या मनाची स्थिति मेल्या-हून मेल्यासारखी होणें स्वाभाविक आहे. अशा वेळीं मायेचें मनुष्य जवळ असलें तर सहानुभूतीच्या जलसिंचनाने मन संताप थोडा तरी कमी होतें. परंतु जिह्वाळ्याचें मनुष्य जवळ नसलें तर नेमळ्या माणसाचें मन निर्जीव बनते व प्रभावशाली माणसाचें मन कोडलेल्या माजराप्रमाणें प्रतिकारास सज्ज होतें.

श्रीमती लक्ष्मीबाईंचें मन वरील अकल्पित घटनेनें बेंगहळ बनलें नाहीं तर त्यामध्ये नवीन चैतन्य संचारलें. एके दिवशीं उदासीन मनाने डोळे मिटून त्या पडल्या असतांना स्वतःच्या डोळ्यापुढून बीज तळपून

गेल्याचा त्यांस भास झाला. डोळे उघडून पहातात तों वाग्देवता दिसली, ती म्हणाली, “ आजपासुनी तुझी दूतिका साक्षात् मी वाग्देवी ” स्वतः वाग्देवीने साहाय्य करण्याचें आश्वासन दिल्यावर लक्ष्मीबाईस धीर आला व त्याच्या अंतःकरणांतील तळमळ वाग्देवीच्या रूपानें अवतीर्ण होऊं लागली, ‘ यं ब्रह्माणामेयं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते ’ असें भवभूतीनें स्वतःच्या भाषाप्रभुत्वाचे वर्णन केलें आहे भवभूतीनंतर वाग्देवी वश झाल्याचें लक्ष्मीबाईव्यतिरेक्त कोणी सांगितलेले ऐकिवांत नाहीं सरस्वतीला वश करण्यासाठीं भवभूतीला पाडित्य तरी संपादावे लागलें. परंतु लक्ष्मीबाईना त्यांच्या असहाय स्थितीमुळे वाग्देवी वश झाली. याचा इत्यर्थ हाच कीं, काव्य स्फुरावयास पाडित्यापेक्षा संवेदनाक्षम अंतःकरण लागतें.

दुसऱ्या ठिकाणीं कवायेत्रीने आपल्या काव्योत्पत्तीचे असें वर्णन केले आहे:—

“ करुणासागर पतिविरहानें बळें जधीं मंथीला ।

तधीं तयांतून लक्ष्मी आली साह्या मज लक्ष्मीला ॥

पतिवियोगात असतांना त्यानी जीं काव्यें लिहिलीं व टिळकांकडे पाठविलीं त्यांतून दोन येथे संक्षेपानें उल्लेखितों—

### १ सवत

सखि रात्रंदिन छळित मला सवत कल्पना ।

घोर तमोजाल विणुनि गुंतवी मना ।

निय नवी उदित कला दावि मीपणा ॥

नेई मज दूर मनीं रुक्ष कानना ।

कटि कसुनो नीट उभी मजसि ताडना ॥ सखि०

### २ नवरा

गुणरूपानें मनासारखा परंतु झाला पिसा ।

साजणी हा तरि नवरा कसा ? ।

काय बोलतो सुत्रुद्धि ऐका प्रपंच माझा कसा ? ।  
विवेक नवरा मशिं बोलेना हा बघ रुसला असा ।

अशा रीतीने लक्ष्मीबाई आपली कहाणी वाग्दूतिकेच्या रूपाने टिळकांना निवेदन करून लागल्या. व त्या कविवर्यांना उत्तरार्थी काव्येच पाठविलीं या काव्य देवघेवीच वर्णन कवयित्रीने असे केले आहे —

दुःखाश्रूंच्या पुरांतुनी ती पोहत पोहत जाई ।  
भेटुन माझ्या पतीस परतुन हांसत हांसत येई ॥  
नवकाव्यांच्या गुंफुन माळा पतिला मीं घाडाव्या ।  
फुलांबदल मीं रत्नमालिका आल्या प्रेमें घ्याव्या ॥

अशा तऱ्हेने फुलमाळा रत्नमालिकाची जा ये सुरू झाली व वाग्दूतीने आपल प्रतिज्ञात कार्य सिद्धीस नले इ. स. १९०० मध्ये लक्ष्मीबाईंनी धर्मांतर केले आणि दीर्घ वियोगानंतर पतिपत्नीचे पुनर्मिलन झाले.

या संमीलनानंतर थोडे दिवस तरी आपण लुब्रेपणा करून नये म्हणूनच जणुं वाग्दूताने थोडी विश्रांति घेतली व पुन्हा ताज्या उत्साहाने काव्यदेवी आविर्भूत झाली निशोजिन कार्य संपल्यावर ती अंतर्धान पावली नाही. तिने आता निरनिराळ्या कार्यक्षेत्रात पदक्रमण केले व ती सर्वसंचारी बनू लागली.

‘ कहाणी ऐकूनी शहाणी झाले ’ असे जनाबाई म्हणते रे. टिळकांच्या सहवासाने आतां लक्ष्मीबाईंच्या काव्याची रचना अधिक टापटिपीची होऊ लागली, व काव्याचे क्षेत्र विस्तारून लागले स्थूल मानाने त्याच्या काव्याचे असे वर्ग पडतील:—

१ सौंदर्याविष्कारक, २ सामाजिक, ३ राष्ट्रीय, ४ प्रासंगिक,  
५ वात्सल्योद्भव, ६ ईश्वरनिष्ठापर, ७ पतिपत्नीप्रेमपर, ८ उपदेशपर,



९ बालगीते, १० संकीर्ण.

आतां आपण क्रमश प्रत्येक वर्गाचा विचार करू—

(१) सौंदर्याविकारक वर्गात ' कारागीर ' व ' रॉबिन पक्षी ' या व इतर कविता घालता येतील.

(२) सामाजिक या वर्गात ' बहिष्कृत याला आर्धी करा ' व ' बाटली ' या आणि इतर कवितांचा समावेश होतो,

या कवितातून सामाजिक अनिष्ट रूढे अगर घातुक संवयी याचा जाज्वल्य भाषेत विकार केला आहे. उदाहरणार्थ ' बहिष्कृत याला आर्धी करा ' या काव्यात जरठ-कुमारी विवाहाची संभावना खालील शब्दात केली आहे —

“ जरि सोडुन गेली अशेष रदनावली ।  
 त्या जागीं खुलली नवीन कुंदावली ।  
 लोपे न कपोलावरची एकहि वळी ।  
 शुभमंगल तो कुंकुम मळवट मुंडावळ त्या शिरी ।  
 कुणाला मुंडण्यास हा वरी ? ॥

अशा आवेशयुक्त वाणीने त्यांनी या विषम विवाहाचा अधिकषेप केला आहे. तसेच मद्यपानानेपेधाच्या चळवळीत त्यांनी ' बाटली ' या नांवाचे एक जोरदार काव्य लिहिले. त्याचे ध्रुपद असे आहे.—

“ चला चला हो देशभगिनिंनो, फोडा फोडा, बाटली ”

(३) राष्ट्रीय कवनांत त्यांच्या प्रभातफेरी गीतांचा प्रामुख्याने अंतर्भाव होतो. राष्ट्रमध्ये स्वातंत्र्याची आकांक्षा बळावली त्या वेळी त्यांनी ही गीते लिहिली. त्यांपकीं एकाचे आकणकडवे ' देशसेवा हा विसांवा, मंत्र वंदेमातरम् ' असे उत्तेजक आहे. केवळ धर्मांतर केल्याने मनुष्य राष्ट्रीय अभिमानाला

व संस्कृतीला पारखें होत नाही याचे उदाहरण श्रीमती लक्ष्मीबाईंचे काव्य असें म्हणतां येईल.

(४) प्रासंगिक या विभागांत 'नाताळचीं गाणीं' डॉ. व मिसेस ह्यूम यांचें स्वदेशी प्रयाण या व इतर कवितांची गणना करिता येईल. कै मोगरे या कवीनंतर लक्ष्मीबाईंनींच बऱ्याचशा प्रासंगिक कविता लिहिल्या. प्रासंगिक कवितांत हृदयाची तत्रितर हाक नसल्यामुळे त्यात फारसा रस उतरूं शकत नाही अस सामान्यतः म्हणतां येईल परंतु मोगन्याच्या काहीं कविताप्रमाणें लक्ष्मीबाईंच्याहि काहीं कविता यास अपवाद आहेत.

(५) वात्सल्योद्भव या गटांत 'मी तुझी मावशी तुला न्यावया आले' ही नितातरम्य कविता, 'चिमकुलें बालक माझ्या पुढें' व 'फुलबाग' या नातवंडावरील कविता याची गणना करितां येईल.

(६) ईश्वरनिष्ठापरः- लक्ष्मीबाईंची परमेश्वरावर अढळ निष्ठा आहे.

देवबापा तुझा आशीर्वाद ज्याला ।

‘ भीति न त्याला कल्पांतीही ॥ ’

असा त्यांचा मनोमय विश्वास आहे. देवाच्या सद्यतेवर निश्चल श्रद्धा अमल्यामुळे त्यांच्यावर कितीहि सकटे आली तरी लहान मुली सागर-गोठ्यानीं खेळतात त्याप्रमाणें त्या त्या सकटाशीं जशा काहीं खेळतातच.

दासानें दासीला काय शिकविलें ।

नाहीं यश आलें रडक्यांना ॥

अशी रे. टिळकांपासून त्यांनीं शिकवण घेतली आहे या विभागात 'देव तारी त्याला कोण मारी' 'पल्लिकापतन' या कविता मोडतात.

(७) पतिपत्नीप्रेमपर या विषयावरील सर्वच कविता, त्यांतील

तत्त्वज्ञानामुळें रमणीय वाटतात. पतिपत्नी हें नातेंच असे आहे कीं, ते आत्यंतिक एकरूपतेशिवाय संभवतच नाहीं.

भिन्न शरीरीं एकच आत्मा, नवल हें असें घडलें ।

म्हणजे त्याला लग्न म्हणावें ! देवानें घडवीलें ॥

ही विवाहाची व्याख्या किती उदात्त आहे ! तसेच “ पत्नीवांचुन पती पांगळा तीहि तशी पतिवीण ” ही विचारसरणीहि सत्यपूर्ण नाही असें कोण म्हणेल ?

(८) उपदेशपर. ख्रिस्ती समाजाच्या उन्नतीसाठीं लहान मुलाकरितां रामदासांच्या वळणावर त्यांनीं ‘ मनाचे श्लोक ’ लिहिले आहेत. सुलभ अर्थबोध, भाषेचा अस्खलित ओघ व अधिकारी वाणीची परिणामकारकता हे या श्लोकाचे विशेष सांगता येतील.

(९) बालगीते या भागात ‘ माझी मांजर, ’ ‘ पोपट ’ व ‘ आंकडे ’ या कविता येतील. पहिल्या दोहोंत लहान मुलांच्या कल्पनेला साजेल असें मांजराचें व पोपटाचें वर्णन केलें आहे तिसरीत लहान मुलाना करमणूक व आनंद होईल अशा पद्धतीनें पहिल्या दहा आंकड्याचें वर्णन केलें आहे.

(१०) संकीर्ण या वर्गात ‘ काव्यकळी, ’ ‘ संसारांतील सुधा ’, ‘ धुंधुरमासाची खिचडी या व इतर कवितांचा समावेश होईल, लक्ष्मीबाईंच्या काव्यांतील विनोद पाहावयाचा असल्यास धुंधुरमासांतल्या खिचडीची थोडी चव घ्या- ( वटवृक्षाचें पिंपरीवर प्रेम बसलें असा प्रसंग आहे. )

तिच्या कारणें जटा वाढवुन वड जोगी झाला ।

ध्यान करायो आसन घालुनि तो रानी बसला ॥

पिंपळ लागे भाऊ त्याचा, त्यास राग आला ।

दो हाताला चोळुन काढी अग्नीच्या जाळा ॥

फणसाला हें सारें कळतां उभारला कांटा ।

जांभुळ पडलें काळें ठिक्कर ऊंस घेइ सोटा ॥  
 डळिबाला हंसूं लोटले तें विचकी दांता ।  
 शिताफळाचे डोळे थकले तें बघतां बघतां ॥  
 भगवा झेडा घेउनि हातीं कोकणांत जाई ।  
 तिन पानावरि चौथें नाहीं पळस खिन्न होई ॥

श्रीमती लक्ष्मीबाईंच्या स्फुट काव्यांसंबंधीं आतापर्यंत वर्णन केलें. या काव्योद्यानांत मध्यभागीं ऐश्वर्यानें शोभणारा कल्पवृक्ष म्हणजे त्यानीं संपूर्ण केलेलें 'खिस्तायन'. रे. टिळकानां खिस्तायनाचे १०॥ अव्याय लिहून ठेविले होतें. त्यांत ६५ अध्यायाची भर घालून श्रीमती लक्ष्मीबाईंनीं पतीचें अर्धवट राहिलेलें वाङ्मय कार्य पुरें केलें आहे. अशा प्रकारचे भाग्य पूर्वीं बाण-भट्टाच्या पुत्राने 'कादंबरी' पूर्ण करून मिळवेलें होतें. परंतु पतीचें उर्वरेत वाङ्मयकार्य पूर्ण करण्याचे भाग्य एकत्र्या लक्ष्मीबाईंच्याच बांज्याला झालें. खिस्तायनाची भाषा ओघवती व प्रामादेक आहेच. परंतु उपमा, दृष्टान्त रूपकें वाचताना श्रीधर कवीचो आठवग झाल्याशिवा राहत नाहीं. लक्ष्मीबाईंनीं काव्यशास्त्राचा अभ्यास केलेला नाहीं. स्वतःच्या काव्यांतले अलंकार त्यांना सांगतां येणार नाहीत. असें असूनहि खिस्तायनांत वैचित्र्यपूर्ण अलंकार साधले आहेत.

“ फुलें आपुलीं । किती उमललीं । कुठें लटकलीं ।  
 चिंता नच ही वेलीला, सुंदरतेची ही लीला ॥ ”

हेंच खरें.

रे. टिळक हे अभिजात कवि असल्यामुळें लक्ष्मीबाईंच्या काव्यांत टिळकांचा वांटाच अधिक असावा, अशा तऱ्हेचा आक्षेप पहिल्या पहिल्यानें घेतला जात असे. परंतु या आक्षेपास स्वतः लक्ष्मीबाईंनीं विनयानें उत्तर दिलें कीं,

“ विचार त्यांचे, कृतिही त्यांची, गाणे माझे नसे ।  
तयांच्या संगे मी गातसें ॥ ”

किवा

“ सतार जड मी खरोखरी गे परंतु कुशलकराचा ।  
स्पर्श कवीचा होता फुटते परे मलाहि मधु वाचा ॥

स्वतः लक्ष्मीबाईंच्या या विनयपूर्ण उत्तरानें त्यांचें काव्य अधिक शोभून दिसेल हें खरें, परंतु आजचा सत्यान्वेषी टीकाकार वेगळेंच उत्तर देईल. वियोगकाळात लक्ष्मीबाईंनीं काव्य केलें तेव्हा त्याम साहाय्य करावयास रे टिळक खास नव्हते. तसेच टिळकाच्या मृत्यूबरोबर लक्ष्मीबाईंचीहि कविताकामिनी मेली नाहीं टिळकाच्या मृत्यूनंतरहि त्यांनीं काव्य लिहिलें, विशेषतः ख्रिस्तायनाकडे दृष्टि वळवली, कीं त्यांची काव्यस्कृति उसनी, भाडोत्री नव्हती हें तात्काळ पटतें. लक्ष्मीबाईंच्या अगदीं पहिल्या पहिल्या कविता वाचल्या, तरी त्यांत प्रतिभेची चमक आढळते. याच स्वयंभू प्रतिभेच्या जोरावर त्यांनीं आपलें काव्य सजविलें. टिळकाच्या सहवासात रचनाचातुर्य त्यांच्यापासून त्या शिकवल्या असतील. परंतु वस्त्र स्वतःचें असल्यावर तें आटपशीर व आकर्षक रीतीनें परिधान करण्यास दुसऱ्याचा हातभार लागला म्हणून ते वस्त्रच दुसऱ्याचे होत नाहीं. स्वतः रे. टिळकांनीं आपल्या पत्नीच्या काव्यासंबंधीं असे उद्गार काढले आहेतः—

प्रसाद आहे, प्रतिभाहि आहे ।

प्रेमौघ गानांतुन नित्य वाहे ।

निगूढ सारें दिसतें परंतु ।

येईल बाहेर, घरीं न किंतु ॥

स्वतः रे. टिळकांच्या काव्यांत प्रसाद व प्रेम हे दोन ‘प्र’कारचे गुण आहेत. असें ताल्यासाहेब केळकर मानतात. परंतु या दोन गुणांबरोबर

प्रतिभेचाहि समावेश करावयास हवा ! हे तीनहि गुण रे टिळक व श्रीमती लक्ष्मीबाई टिळक यांच्या काव्यात आहेत. दोघाच्या काव्यात न्यूनाधिक्य दाखवावयाचे झाल्यास रे. टिळकाच्या काव्यात प्रतिष्ठा व परीक्षिया ? ( Polish ) आहे हे दोनहि गुण लक्ष्मीबाईंच्या काव्यात कमी प्रमाणांत आहेत हे गुण पूर्णतेने त्यांच्या काव्यांत नाहींत, म्हणून त्यांच्या काव्याचें सौंदर्य कमी झालें असें नाहीं कारण ' किमिवहि मधुरणा मंडनम् नाकृतीनाम् , दोघाच्याहि काव्यात एका गोष्टीचा प्रामुख्याने अभाव आहे, ती गोष्ट म्हणजे खासगी, स्वतःची कुरकुर, दोघाचेंहि बरेंचसे काव्य वैयक्तिक स्वरूपाचे नसून, विश्वात्मक स्वरूपाचे आहे

श्रीमती लक्ष्मीबाईंचे जावन वैचित्र्यपूर्ण व काव्यमय होतें, त्यांच्या काव्याकडे व जीवनाकडे पाहिले—म्हणजे पटतें कीं “ काव्य कराया जित्या जिव्याचें जातिघत जगणेंच हवें. ”

र. श्री. जोगळेकर.

— २ —

“आ जीबाई ! कविता म्हणा. आजीबाई, कविता म्हणा !” सर्वांनीं एकच गिल्ला केला आजीबाईंना आग्रह ठाऊक नव्हता, अहंता शिवलेली नव्हती, औपचारिकतेपासून त्या शेकडो कोंस दूर होत्या. मुलां नातवाप्रमाणें शोभणाऱ्या साहित्यिकाची इच्छा कानीं पडताच त्यांनीं कविता म्हणण्यास आरंभ केला ‘ हलवी मना ! प्रभुपाळणा ’ ही भक्तिपर कविता त्यांनीं प्रथम म्हटली. पण ती संपते न संपते तोंच दुसरी, पुढें लागलीच तिसरी .याप्रमाणें त्यांनीं कविता म्हणण्याचा सपाटा लावला. ‘ बहिष्कृत याला आर्धी करा ’ ही कविता ऐकताना तर सारा भ्रातृसमाज चित्रलिखिताप्रमाणें स्तब्ध होता. या कवितेंतील—

कितीक ललना ठार बुडाल्या अंध तमाच्या दरीं

तयांची दाद न कोणा परी

बुडवून त्यांना खुशाल असती नांदत अपुले घरीं

देउनीं ताव पुन्हा मिशिवरी  
हे बंधु कुणाचे चिरंजीव वा पती  
जन परी तयांचा विटाळ ना मानिती  
असे श्रेष्ठ नर, म्हणुनि जगाला विटाळ त्याचा नसे  
स्त्रियांना कां जग बुडवीतसे !

या ओळी म्हणताना तर आजीबाईच्या अंगांत एक प्रकारचा सात्विक संताप संचारला होता. त्यापुढील—

जरि सोडुन गेली अशेष रदनावलि  
त्या जागीं खुलली नवीन कुंदावलि  
लोपे न कपोलावरची एकहि वळी  
शुभमंगल तो कुंकुम, मळवट, मुंडावळ, त्या शिरीं  
कुणाला मुंडण्यास तो वरी !

या कडव्यांत कटु उपहासाच्या जोडीलाच तीव्र तिरस्कार होता. रंगेल जरठाच्या लंपटतेवर सामाजिक टांकेची ती धडाकेबाज फैर झडताच पुरुष भ्रोत्यांना क्षणमात्र हसूं आलें, पण त्यातहि विषादाची छटा होती. आजीबाईच्या प्रभावशाली कवित्वासबंधींचा भ्रोत्याचा आदर जागृत झाला. त्यांच्या माना आपोआप खाली झुकल्या.

**आ** जीबाईचे पिस्कारलेले बाल तागाप्रमाणें पिकले होते व सुरकुतलेले गाल जर्दाळूप्रमाणें सुकले होते. वयाला साठीचा सुमार असूनसुद्धा आजीबाईचा उत्साह ताजा होता. त्यांच्या डोळ्यांत दीर्घ अनुभवाची चमक होती आणि आवाजांत आत्मप्रत्ययाची धमक होती. १९३३ च्या नाताळंत नागपुरास नाट्याचार्य खाडिलकरच्या अध्यक्षतेखाली महाराष्ट्र साहित्य संमेलनाचें अधिवेशन भरलें होतें, त्या वेळचा हा प्रसंग होता. येथील एक सुप्रसिद्ध साहित्यिक प्रो. नानासाहेब बेहेरे यांनीं आपल्या

आतिथ्यशील स्वभावास अनुसरून अधिवेशनानंतर बऱ्याच साहित्यिकांना एक थाटाची मेजवानी दिली. निमंत्रितात आजबाई होत्या. मीहि होतां. लक्ष्मीबाई टिळकाना मीं प्रत्यक्ष पाहिलें व ऐकलें तें याच दिवशीं. बाकीं तशी त्याच्याशीं माझी ओळख नव्हती.

लक्ष्मीबाईची प्रतिभा आपल्या प्रेमळ पतीच्या सहवासांत पालवली. ज्या रे. टिळकांनीं केशवसुत, दत्त व बालकवि या महारंगूतील अग्रगामी कवींना हाताशीं धरून पुढें आणलें, त्यांनींच आपल्या पत्नीच्या कविता-वेलींची आस्थापूर्वक जोपासना केली. टिळक जुन्या जमान्यात जन्माला आले होते, पण त्याची नजर नवीन होती. पत्नी ही जीवनातील प्रत्येक क्षेत्रात पतीची सहचारिणी आहे अशी त्याची प्रीतिपूर्ण श्रद्धा होती ती त्याच्या 'माझी भार्या' या प्रदीर्घ काव्यांतील—

स्वभावोक्ती साधी म्हणुनिच अलंकारिं सरसा  
प्रिया माझी साधी म्हणुनि मजला स्वर्गच जसा.

या ओळींत व 'माझे फूल मला द्या' या गीतांत उत्कटतेनें प्रस्फुटित झाली आहे. लक्ष्मीबाईंनाहि टिळकाबद्दल असीम आदर होता १९०० सालीं टिळकांनीं बाप्तिस्मा घेतल्यावर लक्ष्मीबाई काहीं काळ हिंदु धर्मातच होत्या परंतु त्याची स्थिति—

गिरिच्या शिखरा सोडून फों फों करित नदी घांत्रली  
सारखी झाली होती. त्या नदीला—

दो हातांनीं अडवायाला कितीजणें पातलीं  
परंतु ती मात्र—

पुसे न कोणा, मिई न कोणा

अशा वेगांत पुढें चालली होती. तिनें अखेरीस समुद्रांत उडी घातली आणि आपला नदीपणा नाहीसा केला. लक्ष्मीबाईंनींहि बाप्तिस्मा घेतला व आपलें जीवन टिळकांच्या जीविनांत मिसळून टाकलें.



लक्ष्मीबाईंना कविता रचण्याचा नाद पुष्कळ पूर्वी लागला. परंतु महाराष्ट्रांत त्याची कवयित्री म्हणून ख्याति झाली ती १९०७ च्या जळगांवच्या कविसंमेलनानंतर ! चिंता ही नगंद, ममता ही सासू, कल्पना ही सवत, विवेक हा नवरा अशा रूपकांच्या भाषेत लिहिलेल्या त्याच्या काही सुरवातीच्या कविता उपलब्ध आहेत. परंतु त्यात त्याचे खरे काव्यगुण दिसत नाहीत. जळगांवच्या कविसंमेलनास त्या स्वतः हजर नव्हत्या. परंतु त्यांत उपस्थित असणाऱ्या कविबंधूंना उद्देशून त्यांनी —

**कवि तुम्हां — भिकारिण मी हो तुमच्या दारीं**

हा काव्यमय निरोप पाठविला होता. त्यात रसिकाना त्याच्या कवित्वाचा प्रसन्न उन्मेष दृष्टिगोचर झाला. काव्य म्हणजे कल्पतरूची शीतल छाया आहे व कवि हे त्या तरूवरलीं फुलें आहेत, या कवितेंतील ही कल्पना काही नवीन नाही. परंतु कवितेचा एकंदर डौल, तिच्यातला संयत भाव आणि कवयित्रीचा विनय यांमुळे ती जितकी सुंदर तितकीच सरस साधली आहे

मनोरंजनाच्या १९०९ च्या दिवाळी अकांत लक्ष्मीबाईंची ' करंज्यातला मोदक ' ही प्रेममीमासापर, कल्पनापूर्ण भावकविता प्रसिद्ध झाली आणि उभ्या महाराष्ट्रांत त्याची कवयित्री म्हणून कीर्ति पसरली. पापड व लाटी, कानवला व करंजी या खाद्यपदार्थांच्या जोड्या पाहून त्यांना ' नरनारीसंगम जिकडे तिकडे बाई ! ' हें तत्त्व स्फुरले आणि तें त्यांनी या कवितेंत ओवून टाकलें. या कवितेंतील—

**या नद्या सागरा जाउनि अवघ्या मिळती**

या ओळीशीं शेलीच्या ' लव्हज् फिल्लोसफी ' या कवितेंतील

**The fountains mingle with the river.**

**And the rivers with the ocean.**

या ओळींचें साम्य असल्यामुळे कदाचित् टिळकच लक्ष्मीबाईंना कविता लिहून देतात कीं काय अशी भीतियुक्त शंका कुठेकुठें निर्माण झाली असावी. परंतु ती व्यर्थ होती. कारण लक्ष्मीबाईंच्या कवितेंतील—

ह्या जीवकुडीचा योग न जरि हो झाला  
तरि प्राणी कोठुन मिळे जगीं बघण्याला ?

अथवा—

नरनारी संगम हीच संस्कृती बाई  
विश्वांत एकलें कुठेंच कांही नाही

या उदात्त कल्पनांचा अत्यंत अल्प अंश देखलि शेलीच्या—

What are all these kissings worth  
If thou kiss not me ?

या वैषयिक वासनंत आढळत नाही. परंतु या लोकशंकेमुळे स्वतः लक्ष्मी-  
बाईहि आकुल झाल्या होत्या ही मात्र वस्तुस्थिति आहे. त्याची ती आकुल  
मन स्थिति त्या सुमारास त्यांनी टिळकाना जें पत्र लिहिले होतें त्यात  
उमटली आहे. हें पत्र 'स्मृतिविवत्रा'च्या पहिल्या भागाच्या शेवटी छापलेलें  
आहे. शिवाय पुन्हा त्यांत एका मैत्रिणीनें त्यांना—

मोदक बहु गोड असे, आकारहि सुबक साधला बाई  
परि भर्त्याचें त्याला साद्य नसें का ' कथीं मला ताई !

असा ' भर्ता ' या शब्दावर श्लेष साधून आर्या वृत्तात मोठा मर्मभेदक प्रश्न  
विचारला होता. त्याला उलट लक्ष्मीबाईंनी आपल्या ' पतिपत्नी ' या  
कवितेंत—

असो पुरुष वा असो स्त्री जगीं स्वयंसिद्ध नच कोणी  
परस्परांविण अपूर्ण दोन्ही घेई नीट बघोनी !  
अन्योन्यांच्या साह्ये होतें मानवजीवनपूर्ति,  
स्वावलंबिनी मी म्हणणें ही निराधार गर्वोक्ति !

नरनारीचें संमेलन गे ! म्हणजे मनुष्यजाति  
एकावांचुन दुसरे असणे अपूर्णता ही नुसती !  
मग मज ताई सांग, एकली कां गे ! मी गाईन  
पतिसाह्याचा महालाभ कां सोडुन मी देईन !

असें चोख परंतु हृदयस्पर्शी उत्तर दिलें होतें.

लक्ष्मीबाईच्या आरंभीच्या कवितांवरून टिळकांचा हात फिरला असला नरी तो साफसफाईचा होता त्यात टिळकाच्या कर्तृत्वाचा अंश नव्हता हें त्यांनीं टिळकांच्या पश्चात् कविता लिहिल्या, ख्रिस्तायनाचे पुढले अध्याय रचले आणि ज्यात खरेखुरें जिघंत व जातिवंत काव्य आहे असे 'स्मृतिचित्रांचे' चार भाग निर्माण केले त्यांवरून उघड आहे. 'स्मृतिचित्राच्या' पूर्वी स्त्रिं लिहिलेलें असें फक्त रमाबाई रानड्याचें 'आमच्या आयुष्यातील कांहीं आठवणी' हेंच एक आत्मचरित्रपर पुस्तक होतें. 'स्मृतिचित्रा'नंतर आनंदीबाई कर्वे, कमळाबाई देशपांडे व लीलाताई पटवर्धन यांनीं आपलीं आत्मचरित्रात्मक पुस्तके लिहिलीं आहेत. परंतु भावनाचा प्रामाणिकपणा विचारांचा प्राजलपणा व भाषेचा साधेपणा या दृष्टींनीं त्यापैकीं एकासहि 'स्मृतिचित्रा'ची सर नाही हें कुणीहि सांगेल. टिळकांच्या पश्चात् निर्माण केलेल्या या साहित्याशिवाय १९३३ च्या नाशिक कविसंमेलनाच्या स्वागताध्यक्ष म्हणून, १९३४ च्या नागपूर ख्रिस्ती साहित्य संमेलनच्या अध्यक्ष म्हणून आणि १९३५ च्या स्वतःच्या सत्कारसमारंभात उत्सवमूर्ति म्हणून त्यांनीं जीं विनोदप्रचुर, भावनामय भाषणें केलीं तीं त्यांच्या स्वतंत्र प्रज्ञेची साक्ष आहेत.

**म** हाराष्ट्र-शारदेच्या प्रांगणांत सर्वांत प्रथम लक्ष्मीबाईंनीं पदार्पण केलें. त्यांच्या पूर्वीची स्त्रियांची पिढी कविता रचीत नव्हती असें नाही. परंतु ती कविता म्हणजे गाणें रामाचें, भावा प्रौपदाचा, डोहले सतिचे ओव्या झोपाळ्यावरल्या या पुराण्या प्रकारची होती. लक्ष्मीबाईंनीं तिला नव्यानव्या तऱ्हा, नव्यानव्या चाली शिकवल्या. त्यांच्या धडाडीमुळे इतर

भगिनींना धीर आला, त्यांच्या मुकेपणास वाचा फुटली. लक्ष्मीतनया, लक्ष्मीबाई बेहेरे, शारदाबाई परांजपे, हिराबाई पेडणेकर, शांताबाई फणसे मनोरमाबाई रानडे इत्यादि कवयित्री त्याच्या अनुगामिनी होत. अर्वाचीन कवयित्रीच्या परंपरेचा आरंभ लक्ष्मीबाई टिळकापासून होतो. त्या आधुनिकाच्या आय कवयित्री होत

लक्ष्मीबाईच्या कविताची संख्या फार नाही. त्या तोलांत कमी पण मोलात भारी आहेत. त्याच्या बहुतेक कविता घरगुती प्रसंगाच्या पार्श्व-भूमीवर चितारल्या आहेत. त्याच्या शब्दांचे रंग साधे आहेत त्यात भडकपणा नाही पण चमकदारपणा आहे. 'मी तुझी मावशी तुला न्यावया आले' या कवितेत त्यांनीं भाऊबिजेसाठीं माहेरीं जाण्यास अधीर झालेल्या एका अल्पवयी सासुरवासिनीच्या मुक्या मनाचे करुणकोमल चित्र हलुवार हाताने रेखाटले आहे ही सासुरवाशीण वीसपंचवीस वर्षापूर्वीच्या सामाजिक परिस्थितीतली आहे. कवितेचा आरंभ—

ही भरली घागर तुझ्या शिरावर बाळे ।

अशा सोप्या शब्दांनीं झाला आहे पण त्या 'भरल्या घागरी'त व 'बाळे'त किती खोल अर्थ भरला आहे ! या ओळींत सहृदय वाचकास सहज स्मजेल अशी सूचकता आहे. ती—

तूं अलड साधी पोर । लाडके  
गुरुजनें कल्पिली थोर । लाडके  
तुज कशास हा संसार । लाडके

या टीकात्मक कडव्यांत स्पष्ट झाली आहे.

माहेरीं आपण भाउबिजेला जाऊं  
येतील न्यावया बावा अथवा भाऊ

ही त्या सासुरवाशिणीची मूक मनीषा—

ही गाडी वाजे खडखड खडखड दूर  
हैं इकडे उडतें घडघड तवही ऊर

या दोन ओळींतील अनुकरणवाचक शब्दांना किती यथार्थतेने व्यक्त करण्यात आली आहे ! ही लक्ष्मीबाईंच्या कवित्वाची पराकाष्ठा आहे ! स्त्रियांचे भाव स्त्रियाच बोलू शकतात त्याचे हैं उदाहरण आहे ' भूपती खरे तें वैभवसुख सेवांती ' ही मृच्छकटिकातील एका पदाची चाल लक्ष्मीबाईंच्या अतिशय आवडीची दिसते. त्यांच्या उत्तमोत्तम कविता याच चालीत आहेत. एकाच चालीच्या योजनेने त्याचें काव्य कंटाळवाणें झालेलें नाहीं हे विशेष आहे. त्यांच्या कविताचे स्वरूप पुष्कळसें सहजोद्गारासारखे आहे आणि त्यामुळेच त्यांत ' प्रत्यक्ष कृतीचा ' आढळ होतो. त्यात त्याची समरसता दिसते.

वर सूर्य एकला नाहीं ! क्षणभर नाहीं !

ही ओळ म्हणतांना अथवा—

ही मनांत तुझिया बाई । वासना  
मीं ओळाखिलें का नाहीं । सांग ना

या ओळी आढवतांना वाचकाला क्षणभर त्यांत प्रतिबिंबित झालेल्या कृतीचा आपल्याशीं अभिनय करावा लागतो तेव्हांच तो त्यांत रंगतो.

कवितेच्या प्रवाहांत एखादें तत्त्व सहज तरंगत ठेवावयाचें अथवा एखाद्या अनिष्ट प्रथेवर हलकेच बोट ठेवावयाचें हा त्यांच्या लेखनाचा एक विशेष आहे. ' पतिपत्नी ' या कवितेंत त्यांनीं स्त्री व पुरुष यांच्या साहचर्याचें तत्त्व गुंफले आहे. तर ' रामास बाट नाहीं ' या कवितेंत त्यांनीं अस्पृश्यतेच्या अमानुषतेवर शस्त्र उगारलें आहे. बाट देवाला नसतो हे तत्त्वहि चितनीय आहे.

लक्ष्मीबाईंच्या कांहीं कविता आत्मपर आहेत.

श्रीमती नांव मज आलें । सौभाग्य लयाला गेलें

ही विलापिका टिळक स्वर्गवासी झाले तेव्हांची आहे. या उलट 'वंशवृक्ष हा माझा फुलला' ही आनंदिका पहिला नातू झाला त्या वेळची आहे.

लक्ष्मीबाईंच्या कविता प्रामुख्याने भक्ति, करुण आणि वात्सल्य या तीनच रसांनी अभिषिंचित झाली आहे. किंबहुना तिच्यात या तीन रसांचीच सरमिसळ झाली आहे असे म्हटल्यास तें अधिक यथार्थ होईल. ख्रिस्तायनात त्याचा भक्तिभाव ओसंडत आहे. परंतु तो ग्रंथ विशिष्ट संप्रदायाचा असल्यामुळे त्याबाहेरल्या लोकांना त्याची आवड वाटणें कठीण आहे पण ख्रिस्तदेवावरली त्याची गीतें व प्रसंग ख्रिस्तीपंथाबाहेरील लोकांचीहि अंत करणें जल्मून यावीं इतकीं आर्त व आर्द्र आहेत.

अश्रूंचा विटाळ नको नयनांला

नको ती मनाला हुरहुर

हुरहुरीमुळे नयनाला पूर

पुरांतच दूर प्रभ जाई

ही त्यांची अभंगवाणी तुकयाच्या प्रसिद्ध अभंगवाणीप्रमाणे भाविक हृदयाचा ठाव घेणारी नाही असें कोण म्हणेल ? 'सौभाग्य लयाला गेलें' व मी तुझी मावशी' या गीतात करुण ओतप्रोत आहे. 'वसतांत वात्सल्य आहे. वत्स व वसंत यांच्यांत अभेद आहे. वत्साचे वर्णन म्हणजेच वसंताचे वर्णन. म्हणूनच तें त्यांनीं-

हा असा घरोनी तुला चुंबितें बाळा !

गुदगुल्या करीतें ! वसंत म्हणती याला !

हा असा हसुनि तूं ! असा निसटुनी जासी !

परि पुन्हां बिरुगसी ! वसंत म्हणती यासी !

अशा कौतुकयुक्त शब्दांत केलें आहे. याच्याच जोडाला —

पाय गोजिरे हाणी माझ्या हृदयकपाटावरी  
फोडुनी दुःख, तमातें हरी.

असें तान्हुल्या नातवाचें कौतुक केलें आहे. तेहि कल्पनेच्या दृष्टीनें रमणीय व स्मरणीय आहे. आपल्या नातवंडाना शिकविण्यासाठी त्यानीं काहीं गाणीं लिहून ठेवलीं आहेत त्यापैकीं आकड्याच्या गाण्यातील—

चार कसे-? मांडी मारुनि शांत बसे  
पांचानें- 'आ' करुनी वरतीं बघणें

या गमतीदार कल्पना पाहा. अथवा 'हत्तीच्या गाण्या'तील—

कानांचा- थाटमाट जणुं सुपल्यांचा  
इवरुले- डोळे जणुं झोपीं गेले  
किती लांब- नाक जणुं की मलखांब !

हा खुसखुशीत विनोद बघा या गाण्यांत शिकवणूक आणि करमणूक यांची कशी गट्टी जुळली आहे !

लहान मुलाप्रमाणें प्रौढांना हसवण्यांतहि लक्ष्मीबाई प्रवणि होत्या. या विधानाच्या प्रत्यंतरार्थ, कल्पना, विचार व शब्द, ही त्यांची कविता पुढें करतां येईल.

आई वेडी बाप पिसा  
बाळ जन्मला तोहि तसा

असें या तिघांचें त्यांनीं वर्णन केलें आहे ते जितकें यथार्थ तितकेंच हास्योत्पादक आहे. आणि पुढें त्या तिघांच्या स्वभावासंबंधीं जें विवेचन केलें आहे तें वाचून तर एखाद्या मुखस्तंभाचीहि मुरकुंडी वळेल.

सर सर वर वर आई चढे  
 भर भर येउन खालि पडे  
 बाप पाहतो तिच्याकडे  
 तोही गिरवी तेच धडे  
 पोर त्यांचें अजाण तें  
 कांहीं तरि बडबड करिते

काव्याचा विषय जड इंद्रियांच्या पलीकडचा आहे. पण लक्ष्मीबाईंनी आपल्या मार्मिकतेने तो किती सुगम व मनोरंजक केला आहे.

“ काव्य म्हणजे व्याकरण नव्हे, काव्य म्हणजे शुद्धलेखन नव्हे, काव्य म्हणजे अलंकार नव्हे. काव्य म्हणजे काव्य. आधी सौंदर्य व मग उपचार. सौंदर्य असले म्हणजे सारें आलें”. ही काव्यासंबंधीची टिळाकांची कल्पना त्यांच्या पत्नीच्या कवितेला तंतोतंत लागू पडते. त्याची कविता-कुसुमे इकडे तिकडे विखुरलेली आहेत. त्यांचे सुविद्य चिरंजीव तीं एकत्रित करून त्याचा सुंदर गुच्छ हातीं कधी देणार याची रसिक आनिमिश नेत्रांनी वाट पाहात आहेत.

— भ. श्री. पंडित





# १ कवि आणि काव्य

१ काव्यकळी

२ कल्पना, विचार व शब्द

३ जळगांवच्या कविसंमेलनास निरोप

## काव्यकळी

अनुभूतीच्या घनकांतारीं  
प्रेमलतेवर कळी लाजरी  
उमलेना दे जरी माधुरी  
अनाथ तू का पोर ?

किंचित् कोठें त्वां उमलावें  
खालीं वदना करुनि बघावें  
बघतां बघतां कोसुनि जावें  
काळाच्या उदरांत

वरचेवर ही बघ वनराई  
रविकिरणहि तो दूरच राही  
प्रेमकराला मुकशी बाई  
कुरवाळी मग कोण ?

सृष्टिमाउली दवबिंदूचें  
प्रेमें गुंफी लेणें मुलिचें  
वनराई परि हरुनी घेते  
जाळी मोत्यांची

धाडी तुजला या भूवरती  
नियमहि अवघे त्याच्या हातीं  
तुझ्या सारिखे कितीक जाती  
काळाच्या उदरांत

## कल्पना, विचार, शब्द

( चाल:- धिना धिना धिनक )

गाणें माझ्या अवडीचें  
 बोला फुटक्या कवडीचें  
 एक लकरी गाण्याची  
 ऐका खरि तर वेडीची  
 ताल सुर ना त्या कांहीं  
 वेड्यांचें गाणें हेंही  
 आई वेडी बाप पिसा  
 बाळ जन्मला तोहि तसा  
 सर सर वर वर आइ चढे  
 भर भर येउन खालि पडे  
 बाप पहातो तिच्याकडे  
 तोही गिरवी तेच घडे  
 पोर तयांचें अजाण तें  
 कांहींतिरि बडबड करिते  
 खरी कल्पना ती आई  
 भर भर भर भर वर जाई  
 ती पडतां मग बाप पुढें  
 विचार डोळे मिडुन रडे  
 आइ धडपडी बाप रड्या

शब्द पोर मग मारि उड्या  
 हें असलें गाणें माझे  
 मज वेडीस खरें साजे  
 गाणें माझ्या अवडीचें  
 बोला फुटक्या कवडीचें.



## जळगांवच्या कविसंमेलनास निरोप.

(चाल- भूपती खरे ते वैभवसुख भोगीती)

ही काव्यतरुची छाया शीतळ भारी,  
 तुम्हि कवी फुलें हो ह्या तरुवरचीं सारीं ! ॥४०॥  
 तुम्हि हसतां हसती सृष्टि, सर्व नरनारी !  
 तुम्हि कोपुन जातां जर्गीं खिन्नता सारी !  
 हा सुगंध तुमचा व्यापि दिशांना चारी,  
 मग वाटे भरलें सुखच जगा माझारीं !  
 हे रसज्ञ मंजुळ गीतें , गाउनीं,  
 हे तुमच्या मधुर रसातें, प्राशुनीं,  
 हे तुमच्या भोंते भोंते हिंडुनी,  
 म्हणतात जगाला ह्याच फुलां माझारी,  
 अम्हि जन्म घालवूं ! सौख्य हेंच संसारीं ! १  
 हें त्याच फुलांचें संमेलन हो झालें !

---

हा हार पाहुनी नाथ जगाचा डोले !  
 ह्या पुण्यसंगमा येउन असतें नमिलें,  
 परि दैव आडवें मज दानेला झालें !  
 घ्या ! नमस्कार मम घ्या हो, मानुनी  
 तरि हाच मला हो लाहो ! जन्मुनी,  
 संबंध कवीनो राहो, ह्या जनीं,  
 मी बहीण, आपण भाउ सखे कैवारी ,  
 कवि तुम्ही, भिकारिण मी तुमच्या हो दारीं !२

---

## २ पहिल्या कविता

- १ अगदीं पहिली कविता
- २ काम आणि प्रेम

## अगदीं पहिली कविता

१८९४ सालीं टिळक खिस्ती होणार असें राजनांदगांवीं ज्याच्या त्याच्या तोंडी झाले. लक्ष्मीबाईंनीं त्या वेळीं अगदीं भीत भीत खालीं दिलेली कविता लिहिली, ही त्यांची पहिली कविता, ही लिहीत असतांच टिळक बाहेरून आले. त्यांची चाहूल ऐकतांच लक्ष्मीबाईं घाबरून गेल्या. कविता लिहिल्याबद्दल टिळक रागावतील कीं काय असें त्यांना वाटलें. कवितेचा तो कागद चोळा मोळा करून त्यांनीं तेथील रद्दीच्या टोपलींत खुपसून दिला. आपल्या विरुद्ध, मोहेरी ही कांहीं पत्र लिहीत असावी असें वाटून टिळक लक्ष्मीबाईंवर खूप संतापले. शेवटीं लक्ष्मीबाईंचें तें लिखाण त्यांना टोपलींत सांपडलें. खालीं दिलेली ती कविता वाचून टिळकांना फार आनंद वाटला.

म्हणे जातो सोडून नाथ माझा  
अतां कवणाला बाहुं देवराजा  
सर्वव्यापी सर्वज्ञ तूंचि आहे  
सांग कवणाचे धरुं अतां पाये

( राजनांदगांव १८९४ )



## काम आणि प्रेम

काम बोलतो प्रीतिलागुनी  
मीच गे खरा थोर ह्या जर्नी.  
मी त्यर्जी तुला एकली जरी  
कोण पूसतो तूजला तरी ? १

प्रीती बोले हांसुनी कामराया  
मूर्खा दुष्टा हा तुझा गर्व वायां !  
पापाचा तूं बाप अन्यायमूळ  
मी पुण्याची माय ! हें सोड खूळ ! २

बोलतसे प्रीती आईक कामा रे । मजवर सारे देहधारी ॥  
लहानथोरांना सारी माझी आस । तुझा सहवास तारुण्याशीं ॥  
तारुण्याच्या मदें आंधळे जे होती । तुझ्या ते धांवती जाबाडांत ॥  
सूर्य तो आकाशीं येतां उदयास । खालीं पन्निनीस हसूं येई ॥  
शेंकडों योजनें दूर जाया पती । प्रीतीनें राहती किती वर्षे ॥  
वेढ्या कामा तूरे अंधार, मी ज्योत्स्ना । व्यर्थ अभिमान वाहूं नको ३

( ऑक्टोबर १८९८ )

## ३ आत्मपर

- १ लक्ष्मीनारायण संगम
- २ श्रीमती
- ३ गाउँ कोणस्या परीं
- ४ चिमकुलें बालक माइया पुढें
- ५ ना फूल ना पाकळी

## लक्ष्मीनारायण संगम

( अभंग )

सखी ही कविता सोडुनीयां जातां ।  
 खेद माझे चित्ता फार वाटे ॥ १ ॥  
 पतिवियोगानें जळत मी होतें ।  
 तेव्हां धरी हातें रात्रंदीन, ॥ २ ॥  
 देवानें आम्हांला एकत्र करीतां ।  
 रुसून ती आतां दूर गेली; ॥ ३ ॥  
 प्रीतीचा हो न्याय असाच जगांत ।  
 एक जवळ येत, एक रुसे ! ॥ ४ ॥

( चाल “ घोर भयंकर निर्जनविपिनीं )

गिरिच्या शिखरा सोडुन फों फों करित नदी धावली ।  
 आर्लिगुन सागरास आपण सागरता पावली ॥ ५ ॥  
 दो हातांनीं अडवायाला किती जणें पातलीं ।  
 पुसें न कोणा; भिई न कोणा नीट पुढें चालला ॥  
 खंदक गेले धोंडे पडले वृक्ष निमाले बळी ।  
 पतिव्रतेचा मार्ग कशाचा अडवावा त्या खळीं ? ॥ १ ॥  
 समुद्रांत घालितां उडी ती नदीपणा विसरली ।  
 फों फों गेलें ! नर्तन गेलें ! एकरूप जाहला ॥

माझे गागे, माझी कविता लोप कशी पावली ।

मला समजलें ! लक्ष्मी लागे नारायणपावली ॥ २ ॥

( सुविचार समागम. मे १८९९ )



## श्रीमती

टिळकांच्या मृत्युनंतर दुसऱ्याच दिवशीं मला एक पत्र आलें.  
पत्त्यावर सौ० च्या ऐवजी श्रीमती म्हणून मला संबोधिलें होते !

ल. ना. टि.

( राजहंस )

श्रीमती नांव मज आलें सौभाग्य लयाला गेलें ॥ धृ. ॥

या माझ्या दुर्दैवानें हा कसा साबिला दावा  
हा ओघ काव्यगंगेचा निमिषांत कोरडा व्हावा  
तें जीवन मम जीवाचें मी मत्सी त्यांतिल देवा !

जीवनाविणें ही बाई  
देहाची झाली लाही  
जीवांत जीवही नाही

दिन माझे संपत आलें सौभाग्य लयाला गेलें  
मी रडतें घाई घाई मजसवें दिशा त्या दाही  
त्या शांत करूं मज आल्या सद्गदीत झाल्या हृदयी !  
उमटेना शब्द तयांना परि म्हणति उगी तूं राही  
“ हा टिळक तिलक राष्ट्राचा

तो नव्हता तव अबलेचा”  
 बोलतां पूर अश्रूंचा  
 अश्रूंनीं त्या न्हाणीलें सौभाग्य लयाला गेलें  
 काव्यवृक्ष हा फुललेला कितिकांनीं हालविलेला  
 तरि बहर कमी नच झाला अधिकाधिक देईं फळांला  
 मी वेचित ताजीं सुमनें तीं गुंफित आनंदानें  
 तों कसलें वादळ सुटलें  
 ग्रीष्माचें काळिज फुटलें  
 मी तरूतळींची उठलें  
 हा हाय ! काय हें झालें सौभाग्य लयाला गेलें.  
 ‘वनवासी फूल’ जिवाचें रानांत फोडितें टाहो  
 वनमाली गाउन गेला तो फिरुनी गाइल कां हो !  
 भेटेल पुन्हां परतोनी तो काय मला सांगा हो !  
 तो प्रेमळ मित्रच माझा  
 कवि उद्यानांतिल राजा  
 सांभाळ करुनिया माझा  
 जगतीं मज उंचावीलें, सौभाग्य लयाला गेलें !  
 “ देवाच्या दरबाराचें ” \* इहलोकीं क्षीण उपाय  
 दरबार दिव्य लोकींचा तो पसंत झाला काय ?  
 जी इच्छा मर्निची होती ती विलया गेली हाय !

---

\* आयुष्याच्या शेवटल्या काहीं वर्षांत टिळकांनीं “ देवाचा दरबार ”  
 म्हणून एक कल्पना मूर्त स्वरूपात आणली होती

जगि 'दरबारच्या' साठीं  
 संकटें मत्सरापोटीं  
 जन्मतांच धाउन येती  
 निजहातें त्या सावरिलें ? सौभाग्य लयाला गेलें.  
 ते 'अश्रु' काय प्रेमाचे 'बापाचे' काय कवीचे  
 हें कळलें नाहीं लोकां ते अश्रु खरे कोणाचे  
 वात्सल्य खरें बापाचें कविहृदयीं येऊन सांचें  
 प्रेमाचे फोडुन पाट  
 वत्सलता काढी वाट  
 अश्रुंची उसळे लाट  
 रसिकांते सावध केलें सौभाग्य लयाला गेलें

## गाउं कोणत्यापरी

टिळक वारल्यानंतर एक दोन महिन्यांनंतर श्री. वसंतराव  
 कुकडे मला कविता करण्याचा आग्रह करूं लागले. ल. ना. टि.

गा गा गाणें म्हणतां मजला गाउं कोणत्यापरी  
 नाद ना गाण्याचा ये जरी  
 वसन्त गेला, कोकिल गेला लुप्त जाहला ध्वनी  
 गान मग मजला ये कोठुनी  
 द्विजरायांचे थवे पळाले कुठें लोपले दुरीं  
 फळें, ना गंध, अतां माधुरी !  
 विचार त्यांचे कृतीहि त्यांची गाणें माझें नसे

तयांच्या संगें मी गातसे  
 मम गाणें ना, तें गाणारा मम धनी  
 पडसाद मी, तया देईं सुराला झणीं  
 हें सत्य राहूं द्या ठेवा अपुल्या मनीं,  
 कोकिल गेला, गान हरपलें गाऊं मी मग कसें  
 शून्य मी अंकावांचुन असें.

## चिमकुलें बालक माझ्यापुढें

टिळकांच्या मृत्युनंतर थोड्या दिवसांनीं त्यांचा नातू जन्मास  
 आला त्या वेळीं ही कविता लक्ष्मीबाईंनीं रचिली.

( चाल- भला जन्म हा )

दुःखार्णविं मी बुडतां बुडतां हळुच एक ऊठली ।  
 लाटही प्रेमाची धावली ॥  
 त्या लोटें हळुच आणुनी तीरावर सोडिलें ।  
 जरी मज पुरें पुरें भिजविलें ।  
 शीतल वायू, प्रखर सूर्य हा करी मला कोरडें ।  
 तरी कां येतें मजला रडें ॥  
 आसवें कशाची सांगा मजला कुणी ।  
 मी हसतें रडतें, वेड लागलें मनीं ।  
 रडविती हसविती जुन्या नव्या अठवणी ।  
 एक नयन मम गाळी अश्रू दुःखाचे परि दुजा ।

म्हणे मज सौख्याश्रूंनीं भिजा ॥  
 सुखदुःखाचें भांडागचि हें उघडें माझ्यापुढें ।  
 पाहिले मीं माझ्या प्रभुकडे ॥  
 महिमा त्याचा गौरव त्याचें त्यानें तें आपुलें ।  
 उघडु ही पुढें अहा मांडिले ॥  
 जरा थबकलें, धाउन गेलें, पायांना बिलगलें ।  
 अश्रूंनीं प्रभुचरणा भिजविलें ॥  
 तो मला म्हणे घे तुज व्हावें तें करीं ।  
 मी तुला सांगतों सौख्याला तूं धरी ।  
 ही कृपा जाहली देवाची मजवरी ।  
 बालकवी हा जर्गीं धाडिला देवानें मजकडे ।  
 चिमुकलें बालक माझ्यापुढें ।  
 वंशवृक्ष हा माझा फुलला, बघुनी त्याच्याकडे ।  
 शिंपिले अश्रूंचे मीं सडे ॥  
 सुखदुःखाचा वांटेकरि मम माझ्याजवळी नसे ।  
 पाहुनि मजला, स्वर्गीं हसे ॥  
 हसे फुलांचें सदा जयाच्या हृदयामध्ये वसे ! ।  
 तयाला दुःख पहावें कसें ? ॥  
 तो देवाजवळीं काय विनंती करी ।  
 ही रिती जहाली जागा, परतुन भरी ।  
 जर्गिं सेवा माझी नाही झाली पुरी ।  
 म्हणुन धाडिली जोड नवी ही माझ्या बाळाकडे ।



चिमकुलें बालक माझ्यापुढें ॥  
 पाय गोजिरे हाणी माझ्या हृदयकपाटावरी ।  
 फोडुनी दुःख तमाते हरी ॥  
 साहुनी ऐशा अपमानाते आले मजला हसे ।  
 कळले नाहीं मज ते कसे ॥  
 मी हसतें हें पाहुन आली आशा माझ्याकडे ।  
 घेउनी मजसंगे वर चढे ॥  
 ह्या आनंदाच्या उंच उंच गिरिवरी ।  
 मज घेउन गेली दाग विले ते दुरी ।  
 मम जुनेपुराणे फिळे त्याच्यावरी ।  
 हा सोन्याचा काय हिऱ्याचा दाग म त्यावरी चढे ।  
 चिमकुलें बालक माझ्यापुढे ॥

( ५-८-१९१९ )

## ना फूल ना पाकळी

( शार्दूलविक्रीडित )

येती धावत कल्पना जधिं पुढें ना दौत ना कागद  
 जेव्हां कागद दौत येउनि पडे हो कल्पना गारद  
 जेव्हां ना पदरीं छदाम मनिची औदार्यता केवढी  
 पैशाची परि वृष्टि होत असतां औदार्य मारी दडी  
 पाते ही शुभमंगला घटि परी तो सांपडेना भट

हा आला भट तीथ नाहिं, धरणें हा व्यर्थ अंतर्पट  
 सारे बत्तिस दांत, लभ्य नव्हते साधे चणेही तर्धी  
 आतां दांत न एकही परी इथे सुग्रास राशी किती  
 ह्याला संतति, एक खंडिभर ती, खाया परी ना दिसे  
 ह्याच्या बालकशून्य ह्या गृहिं परी ही अन्नपूर्णा हसे  
 काव्याची लतिका किती बहरते माझी, मती आगळी  
 'त्यांच्या'\* सन्निध मात्र काव्यलतिके ना फूल ना पाकळी

टिळकाना उद्देशून म्हटले आहे

## ४ स्त्री-पुरुष

- १ करंज्यांमध्ये मोदक कशाला ?
- २ पतिपत्नी

## स्त्री-पुरुष

( करंज्या केल्या म्हणजे त्यांबरोबर एक लहानसा मोदक केलाच पाहिजे, पुरणाच्या किंवा गुळाच्या पोळ्या केल्या, की त्यांत एक कानवला आलाच, पापड झाले, की त्यांत एक लाटी तशीच राखून ठेवलीच, ही जी हिंदु स्त्रियांची चाल आहे तिचा अर्थ 'करंज्यामध्ये मोदक कशाला?' ह्या कवितेत कवयित्रीने लावला आहे. ही कविता वाचून तिच्या एका देश भागिनीने तिला प्रश्न केला, की -

मोदक बहु गोड असे आकारुहि सुबक साधला बाई  
तव भर्त्याचें त्याला साह्य नसे का कधीं मला त्राई ?

या प्रश्नाचें उत्तर म्हणून प्रस्तुत काव्य लिहिलें आहे, त्याला कारण जरी मोदक आणि तत्संबंधीं या बाईची शंका झाली असली, तरी याचा विषय पतिपात्नीचें नातें हा आहे. व त्याचें या काव्यांत वर्णन केले आहे, वरील अर्थेत ' भर्ता ' या शब्दावर श्लेष आहे. पुढें 'करंज्यामध्ये मोदक कशाला' व पतिपत्नी ह्या दोही कविता संदर्भासाठीं एकत्र दिल्या आहेत. )



करंज्यांमध्ये मोदक कशाला !

(चाल— भूपती खरे ते वैभव०)

नरनारीसंगम जिकडे तिकडे पाही,  
बघ वरीं खालतीं ! पहा जर्गी कोठेही ॥ धृ० ॥

वर सूर्य एकला; नाही! क्षणभर नाही !

ही प्रभा नित्य त्या आलिंगुनिया राही.

हा चंद्र एकला; नाही! हाही नाही!

ह्यासर्वे चंद्रिका सदैव रमलेली ही!

सप्तर्षी हे आभाळी, यांजला,

ही अरुंधती सांभाळी, प्रेमला,

पति बंधू यांहीं केली, निश्चला,

नभ नटलें तारा तारे ह्या उभयांही

जे वरतीं दिसतें तेंच दिसे खालींही ! १

ह्या नद्या सागरा जाउन अवघ्या मिळती,

ह्या लता तरूंना सावरूनीया धरिती,

ह्या जीवकुडीचा योग न हो जरि झाला,

तारि प्राणी कोटुन मिळे जर्गीं बघण्याला ?

कवि आणि स्फूर्ती दोघे, भेटती,

परिणिली मती अनुरागें, शोभती,

तेव्हांच गायनें ओघें, साधतीं;

नरनारीसंगम हीच संसृती बाई !

विश्वांत एकलें कुठेंच नाहीं कांहीं ! २

कां वदे करंजी मोदक कोठें गेला ?

कां पोळ्या म्हणती करा बघूं कानवला !

कां लाटीवांचुन पापड करि रुदनाला !

मज नको वाटतें कुणास शिकवाया !

“किति हिंदकन्यका वेड्या ! या म्हणा,”  
 “ह्या किती पावल्या थोड्या, शिक्षणा,”  
 “ह्यां करवीं रचवी माड्या, कल्पना;”  
 जगिं राहूं वेड्या अशाच आम्ही बाई !  
 करूं वेड्या इतरां ! यांत न संशय काहीं ! ३

\*

\*

\*

## पतिपत्नी.

“खरें सांग मे ताई ! अपुल्या बाळपर्णीं प्रेमानें  
 शिकवी आई कशी आपणां गोड गोड पक्वान्न !  
 तूप सांडलें, मिसळून गेली साखरेंतहि माती,  
 दूध वाहिलें भूमातेला, थेंब येईना हातीं !  
 तरि जननीनें नाहिं दण्डिलें अपणांला त्या वेळे,  
 मूल लाडकी अजाण म्हणुनी कौतुक उलटें केलें !  
 लहान उण्डा देउन हातीं मांडा शिकवीतांना-  
 सहे उदण्डा प्रमादांस परि कुशल करी निजकन्या.  
 अपक्क झाला पाक, तयाला नांव रुचीचें नाहीं,  
 पुनःपुन्हां परि शिकवी, हेई निराश न कधीं आई,  
 प्रेमापुढतीं अर्थहानिची नसे श्रमांची चिन्ता,  
 निजकन्याहित मात्र ठाउके सदा आइच्या चित्ता !  
 पडो झडो परि वाढत अपुलें बाळ, गीत हें गाई,  
 त्या गानाच्या भरांत अवघ्या विसरे चिन्ता आई.

बरें करुनियां निजकन्येचें माता मुक्त जहाली,  
गेली ! गेली ! गोड घडी ती बाळपणींची गेली !

\*

\*

\*

आराधुनि ईश्वरास अपुला प्रेमळ मग मे तात,  
यथायोग्य वर पाहुन देई कर त्याच्या हातांत.  
म्हणे आपुला तात, वरा त्या, सद्गदीत कंठानें:-  
'ध्या-ध्या माझी मूल लाडकी, सांभाळा प्रेमानें !  
आजवरी ही होती माझ्या गृहिची प्रतिभा सारी !  
होवो आतां तुम्हां दाविती सत्यथ ही संसारीं.  
नव्हे कन्यका, नव्हे प्रभा ही, काळिज काढुन अपुलें-  
तुम्हास दिधले ! कुणास कोणी दान असें नच केलें !,  
निजकन्येस्तव जामाताची सदैव करिती पूजा-  
पितरें, त्यांचा तोच होतसे स्वामी ! ईश्वर ! राजा !  
पितरें प्रिय, तरि कन्या तीही पतीस जीवित वाही,  
भालीं सुन्दर तिलक त्यापुढें स्वर्गहि सुन्दर नाही !  
प्रिय जनकाचा, प्रिय जननीचा प्रेमळ बोध मनांत-  
नित्य वागवी, अनुदिन शोभे लक्ष्मी पतिसदनांत.

\*

\*

\*

नदी सागरा मिळे, मिळे तों तदाकार ती होई !  
तशी कन्यका स्वपतिकुली ती निविष्ट होउन जाई !  
लग्न नव्हे तें प्रेमें केलें एकीकरण जिवांचें !

त्या ऐक्याचें वर्णन करणें शक्य न आपुल्या वाचे !  
 भवनिधिमधल्या सुखदुःखांच्या लहरींनीं भिजवोनी  
 ही प्रेमाची गांठ सोडिली अभेद विश्वि करोनी !  
 पतिपत्नीच्या सदा मनांवर अमृतरसाचा सेक,  
 सुखदुःखांचें बंधन तेणें दृढतर, दिव्य सुरेख !  
 नातें प्रेमळ पतिपत्नीचें, प्रेमच केवळ सारें !  
 जगतीं अवध्या सुगंध, शातळ तें प्रेमाचें वारें !  
 भिन्न शरीरें, मनोवृत्तिही भिन्न, जयाच्या हातीं—  
 एकच आत्मा असे, त्याला जायापति जन म्हणती.  
 समान चक्रे संसाराच्या शकटाचीं हीं दोन्हीं,  
 परस्परांच्या सद्वाचांचुन विफल त्या ओढोनी !  
 असें न जेथें, संसाराचा केवळ तेथें शीण !  
 पत्नीवांचुन पती पांगळा, तीहि तशी पतिवीण !  
 स्नेह आणि गुण दोन्ही मिळतां उभी रहाते ज्योति,  
 संमेलन हे मात्र कार्यकर विश्वीं अशी प्रतीति !  
 सांग गडे ! मज खरेंच तार्ई ! तुला कधीं नाथाचें  
 साह्य न घेतां कार्य साधलें ? सत्यच येवो वाचे !  
 किंवा साह्यवांचुन तुझिया तुझ्या पतीचें चाले ?  
 असें खरें का कुठेंच नाहीं आजवरीं जें झालें ?  
 म्हणशील मी पक्कानें करितें त्यांत नको पतिसाह्य,  
 तरी तुला सांगतें तुझें हें म्हणणें अनुभवबाह्य !  
 गृहांत भार्या, जनांत करितों पराक्रमां एकाकी,  
 असें म्हणें कुणि पुरुष, तरी तें सर्वथैव खोटें कीं !



असो पुरुष वा असो स्त्री जगीं स्वयंसिद्ध नच कोणी,  
 परस्परांविण अपूर्ण दान्ही घेई नीट बघोनी !  
 अन्योन्यांच्या साह्ये होते मानवजीवनपूर्ति ,  
 स्वावलंबनी मी म्हणणें, ही निराधार गवोंक्ति !  
 देशीं इतरीं काय असें तें असो; मला नच ठावें,  
 परि स्त्रीजनें स्वतंत्र आपण येथिल केविं म्हणावें ?  
 नरनारींचें संमेलन गे म्हणजे मनुष्यजाति  
 एकावांचुन दुसरें असणें अपूर्णता ही नुसती !  
 नरा सोडुनी आम्ही राहूं स्वतंत्र ज्या म्हणतील  
 नारी नच त्या, दुसारच सृष्टी ! भलतें त्यांचें शील !  
 तशांत जगतीं जिणें स्त्रिय चें अपूर्णतेची खाण,  
 जगा पूर्णता शिऱ्वायास्तव करी प्रभू निर्माण !  
 महिला आपण हिन्दभूमिच्या अबला यांत न शंका !  
 परवशतेचा अपुल्या अवध्या जगांत वाजे डंका !  
 वाजो परता खुशाल वाजो ! परवशता ही नाही !  
 वृक्षावांचुन लता, लतेविण तरुहि अमङ्गल पाहीं !  
 चंद्रचंद्रिका, वस्तुच्छाया, सरितासागर, बाई  
 नरनारी हीं अशीं युग्मके सदैव गे शुभदायि.  
 येथें पर्वत तिथें पार्वती ! येथें अग्नी तेथें—  
 ज्वाला ! असला दिसला कांठें विपर्यास कोणातें ?  
 मग मज तई ! सांग, एकली कां गे मी गाईन ?  
 पतिसाक्षाचा महालाभ कां सोडुन मी देईन ?

न मी एकली, या वायूच्या साहें वंशच अवघा-  
 गातो माझा ! ईश्वर डुलतो ! म्हणतो आम्हां गा ! गा !  
 बघ इकडे हा कुमार ताई ! तारुण्याच्या दारीं  
 उभा राहुनी गाई, स्फूर्ती यास कुणाची सारी ?  
 पहा पोर ही नव वर्षांची नव गीतांना रचिते,  
 जवळ येउनी पहा कोण गे ! साह्य इयेचें करिते ?  
 पाकागारीं चल तूं माझ्या, नवगीतें सैंपाक्री  
 रचितो ! गातो ! असे मराठी भाषा याची परकी !  
 वेंषे झालीं साठ वयाला सखा पतीचा माझ्या  
 गाउं लागला, वृद्धपणीं हा होतो कविंचा राजा !  
 हीं कविरत्नें अजुन झांकलीं पहा आणखी दोन,  
 ये ! ये जवळी ! तर्क न करणें बरवें ताई दुरुन !  
 महानदाच्या तीरीं तरुवर, लता, धुद्र झुडपें हीं  
 तृणेंहि बाई, परी तयां तो एकच जीवन देई !  
 महानदाच्या साह्यावांचुन जगतो, फुलतो, डुलतो,  
 म्हणतिल ही, तरि कृतघ्नतेचा अतिरेकच झाला तो !  
 असे कृपा ही परमेशाची, नच शाळा पदव्यांची,  
 न ज्ञानाची, तुमची अमुची, केवळ त्याची ! त्याची !

\*

\*

\*

श्वासोच्छ्वासासमान ज्याची अगाध काव्यस्फूर्ती,  
 हृदयमंदिरीं सदैव ज्याच्या वाग्देवीची मूर्ति,  
 अशा कवीचा संग जडाला गायाला लावील !

शुष्क तरूला मेघ असा हा क्षणामधें पालविल !  
 अचेतनांही कवी पदार्थ गायाला, हांसायां  
 लावी ! मग मी सजीव आहे कविरायाचो जाया !  
 सतार जड मी खरोखरी गे, परंतु कुशल कराचा  
 स्पर्श कवीच्या होतां फुटते मऊहि मधु मृदु वाचा !  
 मी वेणू, मज नसे स्वतांचा ध्वनी, परंतू त्याचा  
 श्वास पुरे मजठायिं भराया प्रवाह गानरसाचा !  
 कोणीं तुज सांगितलें भगिनी ? कीं मी सधवा असुनी  
 पतिसाह्याला सौभाग्याला त्यजुनी रमलें गानीं ?  
 आम्रतरूवर गाय कोकिला, वसन्त शि हवी तीतें,  
 मीही गातें काव्यतरूवर पतिसाह्यानें गीतें.  
 योग्य त्याहुनी अत्रिक करावी स्तुति स्त्रियांच्या कृतिची  
 ही न नरांची, परी तयांच्या शालीन्याची नहती;  
 यास्तव कोणी म्हणो हवें तें, स्वयंसेद्ध मी नाहीं,  
 निजपतिसंगें, मागुनि त्याच्या नव काव्यें मी गाई !  
 कोकिल करितो कुहूकुहू तो शब्द झेलुनी बालें  
 कुहूकुहूचें गाणें गाउन रंजविती मन अपुलें !  
 कविरायाच्या अनुकरणातें करितें, गीतें गातें,  
 मीही भगिनी ! तशीच अपुल्या रंजवितें चित्तातें !  
 बाळांचें ते कुहू ऐकुनी प्रत्युत्तर पिक देई,  
 मम गानें हा माझा पिकही अधिक चांगलें गाई !

\*

\*

\*

जशी मी तशी कविता माझी असे मतीनें सान,

मम पतिपुढती उभी राहतां उपजे हिजला ज्ञान !  
 कन्या माझी, माय मी तिची, संशय तिळही नाही;  
 पिता हिचा परि हिज सांभाळी वस्त्राभरणें देई !  
 नवल वाटलें काय यामधें तुला कळेना मातें !  
 कन्ये ! तूं तरि मावशिची ये समजुत कर मत्कविते !  
 तुला वाटते कविता माझी दो दिवसांची पोर  
 इतक्यांतचि ही पुढें पुढे ये काय म्हणून चटोर !  
 तरी मावशी ! ऐक तुझी ही भाची पोर न अजुनी  
 सोळा वर्षें, मासद्वय हो, हिजलागीं जन्मोनी.  
 तरी हिला मी घरांत राही असाच आग्रह करितें,  
 परन्तु हिजला अशी कोंडली राहूं जग नच देतें !  
 आलि दिवाळीं, मामा आला, घेउन हिजला गेला,  
 हिच्या हातचे मोदक वाढी प्रेमें निजमित्रांला.  
 करूं लागले स्तुती हिची ते, कुणाकुणाला नाहीं  
 रुचलें तें ! गे शुभाशुभाचें मिश्रण जग हें बाई !  
 परी जगाला भिउन वागती कोठुन हीचे भाऊ !  
 हिचा पिता तर म्हणे लोकमत हिंदिस्तानीं बाऊ !

\*

\*

\*

जन्मवृत्त गे या लाडकिचें चित्ताकर्षक भारी,  
 पूर्वकथा ती तुला सांगतें, ऐकून घेई सारी.

थोडिथोडकीं नव्हे परी मी वपें चार पतीला  
 अन्तरलेली होतें, भोगित दुर्दैवाच्या लीला.  
 पतिविरहाचें दुःख नको हें वर्णुन दावायाला  
 येवो मृत्यू परंतु हें नच येवो कांथि अबलांला !  
 उदासीनता झांकी जगता नैराश्याचा ध्वान्त  
 जिकडे तिकडे मला जहाली निजदेहाचें भ्रान्त !

अश्रु ढाळित पडलें होतें मेल्याहुन मेलेली,  
 तोंच वाटलें माझ्यापुढतीं वीज नभांतुन आली  
 भीति कशाची विरहातेंला जीव नकोसा जीतें ?  
 डोळे उघडुन मी पाहीलें त्या तेजोमूर्तीतें.

बालवयानें मला वाटली अवतरली ही देवी !  
 असंख्य देवीं, देवींवरतीं भाव तदा मी ठेवीं.  
 म्हणे मला ती “देवदेवता मनुजाचीं संतानें  
 कितीक झालीं, मलाहि अपुलें तूं मानुन घे तान्हें !

“कोटुन आलें नको विचारूं, तेथूनच मी आलें  
 जेथुन येतां मानिशील तूं मजला प्रिय मुल अपुलें.”  
 कांहीं म्हणो ती ! जननी, देवी मींच तिला भानीले,  
 चरणीं तीच्या तेव्हांपासुन निजचित्ता वाहीलें.

द्रवे पाहुनी दुःस्थिति माझी मायाव्द वाग्देवी,  
 शोकाविनोदन करावया मम अपुली सृष्टि दावी.  
 म्हणे मला ती अश्रु पुसोनी “पुरे करीं शोकातें,  
 काय पाहिजे सांग तर खरें, क्षणांत तें तुज देतें !”

प्रेमाचीं हीं वचनें ऐकुन, पाहुन तीची माया,  
अश्रु धांवले, गेले तीच्या चरणांतें भिजवाया !  
पुन्हां म्हणे ती “काय पाहिजे सांग तुला आधीं गे,”  
आलिंगोनी मला धरीते वाग्देवी अनुरागें.

“नको नको गे मजला कांहीं—” गहिंवरुनी मी वदलें  
पुरें जहालें जें दुर्दैवें पापिणिला मज दिधलें !

पतिविरहानळ जाळी मजला तथापि भस्म करीना  
निर्दय म्हणतो मरणापेक्षां बरी इयेची दैना !

देशिल तरि दे इतुकें, की, हा हरो प्राण हे माझे  
पतिविरहानें मरणें जन्मुन हेंच सतीला साजे !”

पुन्हां मला ती दृढ आलिंगी हंसे म्हणे “हें काय ?  
काय पाहिजे तुला मला हें ठाउक नाही होय ?

आजपासुनी तुझी दूतिका मी साक्षाद्वाग्देवी,  
उपभोगी तूं आजपासुनी इच्छित अपुलें भावि !  
तुझ्या पतीला निरोप तव मी जाउनियां सांगेन,  
एक एक पद तुझ्याजवळ त्या आकर्षूनि आणीन.”

दुःखाश्रूंच्या पुरांतुनी ती पोहत पोहत जाई,  
भेडुन माझ्या पतीस परतुन नाचत हांसत येई,  
रानें निर्जन, दऱ्या भयंकर गिरिशिखरें ओलांडी  
कुशल पतीचें जणूं सुधेचें पात्र मजपुढें मांडी !

निरोप माझे तिकडे नेई तिकडुन आणि निरोप,  
सुदृढ, रम्य अनुबंध निजागें देवी होय अपाप.

नवकाव्यांच्या माळा गुंफुन पतिला मीं धाडाव्या,  
 फुलांबदल मीं रत्नमालिका आल्या प्रेमें घ्याव्या !  
 प्रीतिलतेला मिळतां कर्दम दुःखाचा फोंफावे,  
 कितीतरी आस्वर्ग वृद्धिला दिव्य लता ही पावे !  
 विरहाश्रूंची वृष्टी वरुनी तशांत होतां काय  
 बोलायाला नको ! लता ही विश्वीही न समाय !  
 तशांत कविता दूती माझी झालेली पाहोनी  
 किती हर्ष मत्पतीस ! इतरां अर्थ काय सांगोनी ?  
 तिनें शेवटी हजार विघ्नें असतांही उभयांला  
 कसें जोडिले, हें सांगाया आज न अवधी मजला.  
 कवितादेवी प्रसन्न मजवर झाली, घेउन गेली  
 कविरायाच्या चरणीं मजला, यांत गोष्ट मम सरली !  
 असो; एवढ्या सारांशाला ठेव मनीं तूं बाई !  
 सोळा वर्षांपूर्वी कविता उदिता मन्मनि होई.  
 मला वाटतें भेट आपुली तत्पूर्वी झालेली,  
 तेणें भासे तुला अजुन मी असेन जैसी पहिली !  
 सहवासें, अनुभवे मनुज हा वाढत, बदलत जाई,  
 या नियमाची मला वाटतें दादहि तुजला नाही !  
 तशांत भार्यापती मिळोनी व्यक्ती एकच बाई,  
 गुणविनिमय यांच्यांत पहातां काय त्यांत नवलाई ?  
 करुणासागर पतिविरहानें बळें जधीं मंथीला,  
 तधीं तयांतुन वाग्लक्ष्मी ये साह्या मज लक्ष्मीला !

या लक्ष्मीला काय कमी ? मी जरी भिकारी अंगें,  
 शब्द, कल्पनासंपत्ती ही सदैव हीच्या संगें !  
 समज काय जें समजायाचें यावरुनी तें बाई,  
 कविता म्हणजे काय ठाउकें असेल जारें तुज काहीं !

\*

\*

\*

करावयाचें काय तुला हें वृत्त सर्व सांगून ?  
 क्षमा करीं, मी वेडी, नाहीं मला जगाचें ज्ञान.  
 दिवाळीतले मोदक माझे कसे साधले मजला,  
 हेंच एवढें जाणायाची इच्छा दिसते तुजला;  
 त्या तुजला हें दीर्घ कथानक सांगून मीं शिणवीलें,  
 पुरे करितें आतां भगिनी, जें झालें तें झालें.  
 वित्त पतीचें, आज्ञा त्याची, परी सिद्धता माझी;  
 साह्ये आतां तुला सांगतें मजला झालीं जीं जीं.  
 दिवाळेचे मी मोदक करितें ऐसें ऐकुन आली  
 स्फूर्तिसखीसह साह्य कराया वागदेवी मम आली !  
 वागदेवी तैं पाती करुनी देई मम हातांत,  
 सखी स्फूर्तिनें प्रेमरसाचें पुरण घातलें त्यांत;  
 एकामागुन दोनतीन मीं मोदक केले बाई,  
 तरी त्यांचा घाट सुबकसा मला साधला नाहीं.  
 केले मोदक पुन्हां मोडिले, किति वेळां हें झालें !  
 नाहीं घालें, निराश झालें, रडकुंडीला आलें !



वाग्देवीचीं पातीं झालीं, पुरण घेउनी हातीं,  
 स्फूर्ति बसली उगाच, माझ्या मुखाकडे त्या बघती !  
 ठाउक नाही कुठून कळलें मम नाथा हें वृत्त,  
 पत्नीची ही वधुन निराशा द्रवलें बहु तच्चित !  
 हात धरोनी नीट करावा घाट कसा हें दावी,  
 थोडी होतें चुकत परी मज नीट पथाला लावी;  
 जाय तेशुनी प्रेम वधुन हें वाग्देवी स्फूर्तीला  
 हंसे नावरे, तयांबरोबर भगिनी माझे मजला !  
 वाग्देवीनें वा स्फूर्तीनें साह्य कां न तव केलें,  
 म्हणाशिल, तरि जा पूस तयांना धैर्य तुला जर असलें !

\*

\*

\*

झाले मोदक, तयां बघोनी सृष्टी हर्षित झाली,  
 नरनारीनां संगे घेउन मोदक बघण्या आली !  
 गगनभाग लंघानी प्रभेसह हर्षे भास्कर आला,  
 न कळे मजला आमंत्रण हें दिधलें कोणीं याला !  
 वाग्देवीचें आणि सृष्टिचें विदित जगाला नातें,  
 या दोघांनीं आमंत्रिलें मला वाटतें यातें !  
 गेला रवि, तों चन्द्र चन्द्रिकेसहित पातला बाई !  
 मन्मोदकधवलिमा वाटतें आमंत्रण यां देई !  
 सप्त ऋषींच्यासह साध्वी ती अरुन्धतीही आली,  
 मोदक माझे पाहुन अगणित तारकपंक्ती धाली.

मला वाटतें मिष्टान्नाचा वास अम्बरीं गेला !  
 कुठे अन्न तें पहावयाला जो तो धांवत सुटला !  
 भांबाउन मी गेलें, केली खालीं लाजुन मान,  
 स्वभूमीचा संगम होइल नव्हतें मम अनुमान !  
 कुणास कोठें बसवावें मे कसा कुणाचा मान—  
 नव्हतें, नाहीं मला अजूनी काडीभरही ज्ञान !

\*

\*

\*

असो मोदकाख्यान पुरें हें, ऐक एवढी खूण,  
 पतिपत्नीला दोन म्हणुं नये दिसती दोन म्हणून !  
 कधीं विचारुं नको कुणाला, कीं तुज अमक्या कामीं  
 साह्य पतीचे असे नसे वा ? शपथ घालिते तुज मी !  
 हृदयें ज्यांचीं प्रेमतंतुनें सदैव एकच केलीं  
 तीं पतिपत्नी, भुतेंच दुसरीं त्या नांवाला ल्यालीं !  
 मूर्तिमंत जें प्रेम त्याचें नांव जर्गी दाम्पत्य,  
 वाडिल बहिण मी, माझे म्हणणें चाल मानुनी सत्य !  
 प्रेमजीवनीं वाढे लतिकाल्नी, हिचिया साह्याला  
 सर्व धांवती, हीही करिजे साह्य समस्त जगाला !  
 नियम हा असा, त्यांत पती तर जीवच निज पत्नीचा !  
 जीवावांचुन उपाय चाले कोठें काय कुडीचा ?  
 तशांत मी तर लोहच केवळ, तुला सांगतें स्पष्ट !  
 त्या परिसाच्या संगें झालें सोनें मे उत्कृष्ट !

---

त्या परिसाचा, कविरायाचा, पतिरायाचा मान  
पाहुनी माझी कृती करावा, हेंच पुरें मज दान !

•

•

•

ऐकलेंसना बाई ! आतां मोदक कैसे केले ?  
पुन्हां विचारूं नको असें तूं, जें झालें तें झालें !  
असाच परिचय वाढत जावो, पाठवीत जा पत्र,  
ईश्वर राखो सुखी सदा गे भगिनी, तव पतिछत्र !

---

## ५ सामाजिक टीका

- १ बहिष्कृत याला आर्घी करा
- २ बाटली
- ३ स्नानासाठी
- ४ रामासि बाट नाही

## बहिष्कृत याला आधीं करा

( चालः प्रिये प्रेरणे थांब )

निशा संपतां उषा ये पुढें अपुले वेळेवरी ।

जगाला हलवुनि जागे करी ॥

मंदस्मित ती हास्य करुनिया बोले नानापरी ।

आळस झाडुन फेंका दुरी ॥

किती युगांची नीज लागली, सरेल केव्हां तरी ।

बघतां वाट अतां कुठवरी ? ॥

ही पशुवृत्तीची पेठ उघडिली दिसे ।

ह्या निर्लज्जेला कसें लागलें पिसें ।

कीं अंध जहाली, पुढलें ना तिज दिसे ।

थोर पोर वा वृद्ध तरुणही कोणी येता जरी ।

तुडवुनी माती त्याची करी ॥ १ ॥

कितीक ललना ठार बुडल्या अंधतमाच्या दरीं ।

तयांची दाद न कोणा परी ॥

बुडवुनि त्यांना खुशाल असती नांदत अपुलें घरीं ।

देउनी ताव पुन्हां मिशिवरीं ॥

ललनेसम तो नाहीं पडला—पदर शिरींचा तरी ।

शिरावर पागोटें भरजरी ॥

हे घालुन अवघ्या समाजांत मिसळती ।

हे बंधु कुणाचे, चिरंजीव वा पती ।

जन परी तयांचा विटाळ ना मानिती ।  
 असे श्रेष्ठ नर म्हणुनि जगाला विटाळ त्याचा नमे ।  
 स्त्रियांना कां जग तुडवीतसे ॥ २ ॥

वृद्ध विधुर हा काठी त्याची बाला विधवा असे ।  
 तिच्यावर माया त्याची दिसे ॥  
 तिला सोबतिण व्हावी म्हणुनी अंगवस्त्र लेतसे ।  
 तरी नच झाले, व्हावे तसें ॥  
 मृत आत्म्याला पिड न मिळतां स्वर्गीं व्हावें क्रम ।  
 पुत्रा वांचुन गृह शून्यसें ॥

जरि सोडुन गेली अशेष रदनावली ।  
 त्या जागीं खुलली नवीन कुंदावली ।  
 लोपे न कपोलावरची एकाहि वळी ।  
 शुभमंगल तो कुंकुम, मळवट. मुंडावळ त्या शिरीं ।  
 कुणाला मुंडण्यास तो वरी ॥ ३ ॥

कशास व्हावी तुला कुणाची उगा फुकट चाकरी ।  
 खा गे खुशाल मिठ भाकरी ॥  
 धनीण गोळाभर अन्नाची बाडें भुरकें जरी ।  
 नेसुनी खुशाल जप 'हरि हरी' ॥  
 जन्मा घेशी उदरीं माझ्या लज्जा राखी तरी ।  
 होशिल भूषण मज तूं खरी ॥  
 ही जननी तव गे सान असे तुजपुढें ।  
 तूं तिला शिकविशी पावित्र्याचे धडे ।

हो बंधु तुला मग घेशिल त्याला कडे ।  
 चुंबुनि त्याला धरिशिल जेव्हां घट्ट आपुले उरीं ! ।  
 दुणावें सौख्य तुझें किति तरी ॥ ४ ॥  
 ही सौख्याची व्याख्या याची दुसऱ्या पुरती दिसे ।  
 आपुलें सौख्य निराळें असे ॥  
 जगा शिकवितां एक, वागतां आपण दुसरे परी ।  
 रीत ही तुमची तुमच्या परी ॥  
 नाना रंगीं खेळ खेळुनी जगांत रमता असे ।  
 ईश्वरा येई तुमचे हसे ॥  
 ही पतिता म्हणुनी हिला दूर लोटिता ।  
 तो पतीतपावन पावे अधिकारता ।  
 हा न्याय कोठला, परि तुमची मान्यता ।  
 उघडा डोळे, पुरा ओळखा कोण पतित हा खरा ।  
 वहिष्कृत याला आर्धी करा ॥ ५ ॥

## बाटली

( चाल—आनंदाचा कंद )

चला चला हो बंधु भगिनिनो फोडा फोडा बाटली ! धृ.  
 \* भक्तासाठीं ग्लासापोटीं हृदय जाळण्या राहिली १  
 अर्पूनि ज्यानें तन मन धन तिज अहुती आपली वाहिली २  
 काय तयानें धडा शिकविला वृथा शिणविली माउली ३  
 सर्प डसे जारि तो एकाला स्वर्ग गती त्या पावली ४  
 पहा नाश हो हिदभूमिचा ह्या मदिरेच्या पावलीं ५  
 एकामागे असंख्य जाती यमसदनाच्या साउली ६  
 ना. मे. ( बालबोध मेवा ऑगस्ट १९३० )

## स्नानासाठीं

( चाल— भक्ति ग वेणी )

पाठोंपाठीं । अवदशा घेउनी काठीं  
 दारूसाठीं । हातांत देइ करवंटी ॥ धृ० ॥  
 धनसुतदारेली तो मेला । निर्लज्जेचा बनला चेला ॥  
 अब्रूचा तर खुरदा केला । निशेच्यासाठीं ॥  
 अवदशा घेतली पाठीं ॥ १ ॥



ज्ञानाच्या तो सांगे बाता । अज्ञानाच्या धरूनी हाता ॥  
विज्ञानी हा म्हणतो जगता । तुमच्या साठीं ॥

ध्या चला करा लयलूटी ॥ २ ॥

विस्मरणाचा करिं घे प्याला । रोग तनूचे विसरुन गेला ॥  
दुःख कशाचे स्वप्नीं त्याला । औषधासाठीं ॥

जिभल्या हा वेडा चाटी ॥ ३ ॥

विहस्की, ब्रॅन्डी, देशी ताडी ? । असे कशाची अपणा गोडी ?  
बघा कशी ती चव ही थोडी । ऋषींचे साठीं ॥

आपणा सोमरस वांटी ॥ ४ ॥

नका करूं पूर्वज-अवमाना । अमृताचा हा प्याला ध्याना ॥  
नेइल स्वर्गगेला अपणां । न्हाण्यासाठीं ॥

अप्सरा लागती पाठीं ॥ ५ ॥

स्वर्गगेच्या करितो बाता । वरती बसती पाठेंत लाथा ॥  
उचली ना तो अपुले हाता । स्नानासाठीं ॥

उतरला गटारा-पोटीं ॥ ६ ॥

## रामासि बाट नाहीं

बाल्हास मुनि बनाया । लावीति रामराया ॥

जिव्हाग्रिं राम राही । रामासि बाट नाहीं ॥

वैरीण कैकयी ती । माते समान मानी ॥

‘घे राज्य’ तीस बाही । रामासि बाट नाहीं ॥

सोडोनि आर्य बंधू । स्वीकार करि जगाचा ॥  
 वनवास भोग देही । रामासि बाट नाही ॥  
 बहरी फळास चाखी । शबरी, प्रभूस अर्पी ॥  
 सानंद तींहि खाई । रामासि बाट नाही ॥  
 हनुमान तोहि खपला । का बाट मानवाला ॥  
 तो राम सर्व देहीं । रामासि बाट नाही ॥  
 लंकेश गेहि राही । सीतेस बाट नाही ॥  
 रामास बाट काई । रामासि बाट नाही ॥  
 जो जाहला जगाचा । त्या कासया छळीता ?  
 कां टाकितां तयाला । बंदीत भक्त बोला ॥  
 बाटास वाट द्या रे । एकत्र होउं सारे ॥  
 स्वातंत्र्य भारतात । द्या घ्या हातांत हात ॥

## ६ वात्सल्य

- १ वसंत
- २ मुलाचें म्लान मुख पाहून
- ३ एकुलत्या मुलाचा वाढदिवस
- ४ दौलत तुजला देतें
- ५ उपदेश-आशीर्वाद
- ६ चिमुकल्या बोल
- ७ मी तुझी मावशी तुला न्यावया आले

## वसंत

हा असा धरोनी तुला चुंबितें बाळा !  
 गुदगुल्या करीतें ! वसंत म्हणती याला !  
 हा असा हंसुनि, तूं असा निसडुनी जाशी !  
 पारि पुन्हां बिलगशी ! वसंत म्हणती यासी !  
 हा असा तुझ्या रे करचरणांना चाळा,  
 हा पाहुनि म्हणतों वसंत करितो खेळा !  
 तुजसर्वें वनीं फुलवेली-पांखरें,  
 सृष्टिचीं मजेमधिं आलीं-लेंकरें !  
 सारेंच जसें या कालीं-नाचरें !  
 तूं नाच, नाचरे, नाच ! धरीतें ताला,  
 बघ वसंतरागीं वसंत करि गानाला !  
 तूं ये ये म्हणतां मीही धांवुनि येतें !  
 मग आपण करितों कितीतरी मौजातें !  
 ही तशीच आपुल्या सृष्टिमाय बाळातें  
 रमविते, खेळतें ! वसंत म्हणती त्यातें !  
 ही मजा मायलेंकांची-चालते !  
 पाहुनी वृत्ति विश्वाची डोलते !  
 स्वर्णदी हर्ष सौख्याची-धांवते,  
 या पृथ्वीवर, ये नवेपणा उदयाला;  
 तुज कळेल पुढतीं वसंत म्हणती याला.

## मुलाचें म्लान मुख बघून

चाल—आज म्या ब्रम्ह

आज मीं नवल पाहिलें ।

शशिरायाचें\* बिंब सुघेचें म्लान जाहलें ॥ धृ. ॥

सांग गड्या तूं सांग मला तरि

चोरूं नको तूं कांहीं अंतरीं

कोणीं तुज छळिलें ?

वाच्यासंगें धावत सुटले

अवडंबर तें पुढतीं आलें

तुजला लपविलें ?

शीतकराला कोणीं पिडिलें ?

राहु केतु तव कोण जहाले ?

सांग काय झालें !

सूर्य बिंब का बुडलें म्हणुनी ?

अंधकार पसरला पाहुनी ?

दुःख तुला झालें ?

ईश्वर भजनीं, मग चितनीं

किंवा असशी प्रभुच्या घ्यानीं

मुख का झांकीलें ?

\*मुलाचें नांव शरश्वद्र होतें.

## एकुलत्या मुलाचा वाढदिवस

अभंग

वाढ वाढ बाळा, मातेचा एकुलता  
देव देवो हातां तुला सदा

वाढ वाढ बाळा, कान्ते बरोबरीं  
लक्ष्मी तुझ्या घरीं वास करो

वाढ वाढ बाळा, बाळां बरोबर  
शारदेचें घर तुझें होवो

वाढ वाढ बाळा बिघ्या खंडि ऐसा  
गरीबाला पसा पसा देई

वाढ वाढ बाळा, गंगेच्या समान  
गांवो गांवा मिळून नेई शान्ति

वाढ वाढ बाळा, वृक्षाच्या समान  
कर शान्त श्रान्त छाये खालीं

वाढ वाढ बाळा, मेरूच्या सारीखा  
ज्ञाती धर्म हेका, लोपो सारा

वाढ वाढ बाळा, उदधी परीस  
उदार मानस तुझें होवो ,

## दौलत तुजला देतें

( साकी )

जाशी आतां दूर लाडके काय तुला म्यां द्यावे  
 निर्धनता मम धनराशी ती तुला पुरे हें ठावें १  
 थांब गडे घे घे घे सारी दौलत तुजला देतें  
 देतें तुजला, ठेव जपोनी, नाजुक मम हृदयाते २  
 येशिल जेव्हां परतुन तेव्हां माझे मजला देई  
 हीच लाडके एक विनंती माझी तुझिया पायीं ३  
 जलासिंधूच्या लाटांवरतीं नको याजला सोडूं  
 नको वायुच्या गिरक्यामध्ये गिरक्या घेण्या धाडूं ४  
 सांग कधीं का कुणीं कुणाला हृदया अर्पिले  
 मी दुबळी तव माता परि तुज दूर देशि धाडीलें ५  
 दुबळी नच मी परि मन दुबळें लाज तयाची वाटे  
 आजवरी तुज अशी धाडिली नाहीं कधींही कोठें ६  
 थोर तुझा भाऊ पाठीची बहीण तूं गे बाई  
 बहीण परि झालीस प्रसंगीं तूं पाठीचा भाई ७  
 मम आशेला पूर्ण करीतो माझा ईश्वर बाप  
 वृक्ष लाविला फळें तयाला येती आपोआप ८  
 जा जा बाळे इच्छित सारें पूर्ण करानी येई  
 टिळक कुळीचा जनसेवेचा भालिं टिळक तूं लेई ९

( कराची : ताराबाई इंग्लंडला जाताना )

## उपदेश

शान्ति प्रीती मैत्रिणी जोड बाई  
 त्यांच्या योगें सासरीं गोड होई  
 तेथें सानाथोरल्या मान हेई  
 भक्ती सारी राहुं देई पतीशीं



## आशीर्वाद

ये घे देतें आशीर्वचना आज तुला बाई  
 धनधान्यानें पूरित केतन, उणें न तुज कांहीं  
 विद्येचा तूं हात धरोनी येशिल गे पुढतीं  
 बाळ गोजिरे घेउन बसशिल तूं अंकावरतीं  
 पति सौख्याचा लाभ लाडके तुजला होईल  
 नवे नवे वर परमेशाची कृपाहि वर्षेल



# चिमकुल्या ! बोल !

( अंजनी गीत )

बोल \* गडे तूं, बोल चिमकुल्या  
बोल लाविती वेडच मजला  
आजोबा तूं, काय सानुल्या  
बोल गडे तूं बोल १

वेड मला परी तव बोलाचे  
हवें कशाला शास्त्रज्ञांचे  
ज्ञान मला नच तव भाषेचें  
पुरवी माझे कोड २

पंतोजी तूं माझा असशी  
नवे नवे मज धडे शिकविशी  
उमजे ना परी कांहीं मजशीं  
परी लागे तें गोड ३

बोल बोबडे मंजुळ वाणी  
थेंव सुधेचे पडती कार्णी  
स्मृती वयाची जाय झुळनी  
तुजसंगें मी पोर ४

शुद्ध मनाच्या पात्रा मधुनी

\* ( चि० नारायण नुक्ताच बोल्लं लागला होता: ल. ना. टि. )

चाङ्गमय सरिता येइ धावुनी  
मज वाटे मी जात वाहुनी  
चुंबन दे मज गोड ५

किंवा सांठा तूं प्रेमाचा  
भेद न तूंत आपपराचा  
लेश नसे वा तुज स्वार्थाचा  
कर माझी तूं जोड ६

तुजसम मजला करिशीं वा रे  
जगताचें मज नलगे वारें  
पोकळ चुसते फुगे फवारे  
जग उडवी सारें ७

चान्यासम तूं फिरशी वा रे  
गोळा करिशी अंबुद सारे  
अस्फुट शब्दांच्या भडिमारे  
सांबाउनि मेलें ८

कळो मला वा न कळो कांहीं  
तुला तयाचीं दादच नाहीं  
एकतानता स्वयेंच तूं ही  
धार सुधेची सोड ९

## मी तुझी मावशी तुला न्यावया आलें

ही भरली घागर तुझ्या शिरावर बाळे !  
 तूं उभी ? लागले कुठें कुठें तव डोळे ?  
 ही गाडी वाजे खड खड खड खड दूर,  
 हें इकडे उडतें धड धड तवही ऊर !  
 तूं प्रसन्न आतां, क्षणें खिन्न तूं होशी,  
 मेघांत गवसला चंद्रच दुसरा दिसशी !  
 तूं अल्लड साधी पोर ! लाडके,  
 गुरुजनें कल्पिली थोर ! लाडके,  
 तुज कशास हा संसार ? लाडके,  
 हा दोन दिवस तरि टळो म्हणोनी झालें  
 मन अधीर गेलें माहेरा तव गेलें !  
 माहेरीं आपण भाऊबिजेला जाऊं,  
 येतील न्यावयां बाबा अथवा भाऊ,  
 हें प्रौढपणाचें ओझें फेंकून देऊं  
 सुचतील तेवढे खेळ खेळुनी घेऊं  
 ही मनांत तुझिया बाई ! वासना  
 मीं ओळाखिलें का नाहीं ? सांग ना !  
 भर बघूं पुन्हां अश्रूंनीं ! लोचना  
 ये हासत आतां आलिंगी मज बाळे !  
 मी तुझी मावशी तुला न्यावया आलें !

( मनोरजनः दिवाळी खास अंक १९१२ )

## ७ नातवंडे

नातवंडे

---

१ फुलबाग

२ सिंहगड

शिशुगीते

---

३ उंदीरमामा-माऊ मावशी

४ गाय

५ पोपट

६ कावळा

७ अगबाई ! हें काय ?

८ चिमणी

९ गेंडा

१० टिपऱ्यांचा खेळ

११ अंक

( आईने दोन अडीच वर्षे माझ्या पत्नीबरोबर व बहिणी-बरोबर कराचीस घालविली. त्या दोघी शाळेत जात. घरी आई आपल्या तीन लहान लहान नातवंडांना खेळवीत, शिकवीत, भरवीत बसे. आजो आम्हाला कुत्र्याचें गाणें पाहिजे, कीं कुत्र्यांचे गाणें तयार होई, मांजराचें पाहिजे, कीं मांजराचें होई. मुलांना अक्षर ओळखहि तिनेंच मोठ्या मजेदार रीतीनें करून दिली. कौतुकाच्याहि कांहीं कविता तिनें तेव्हां रचल्या. ह्या प्रकरणांत आरंभीच्या “ फुल बारु ” व “ सिंहगड ” ह्या अशा कविता असून पुढील “ शिशूगीतें ” त्यांना रमविण्यासाठीं रचलेली आहेत.)

## फुल बाग

( चालः किती गोड किती रे गोड )

हीं मुलें वेलिवर फुलें हंसतिं किति डुलतीं  
 ही वेल लाविली प्रभु तूझ्या हातीं १  
 साजिरीं किती गोजिरीं दिसति इवलालीं  
 तव दया थोर किति मजवरती झाली २  
 किति किती बोलतो एक, बोबडा दुसरा  
 ही बाळ टकमका पाहि, गाल हसरा ३  
 हीं पुरी नाहिं तिजवरी अजुन खुललेली  
 तरि मला तयांनीं कितीक भुलविली ४  
 तइं गंध लावि मज छंद सुचूं नच देई  
 तो माझ्या हृदयीं भरुन पुरा राही ५

( बा. मेवा. फे. १९३३ )

## सिंहगड

( आम्ही एकवेळ सिंहगड सिनेमा पाहण्यास गेलों होतों. घरी आल्यावर दुसरे दिवशीं मुलें एका खोलींत खेळत असतां जे शब्द माझ्या कानीं पडले ते तसेंच लिहीत आहे ! ह्यांत माझे कांहीं नाहीं. त्यांच्या वयाच्या मानानें - त्यांचे हे बोल फार आकर्षक वाटले. त्यांचीं वयें फारच लहान- निदान मला तरी तसें वाटतें. थोरला नारायण वय साडेचार वर्षांचें. मधला अशोक वय अडीच वर्षांचें धाकटी मीरा वय दीड वर्षांचें. ल. ना. टि. )

( साकी )

एके दिवशीं सिंहगडाचें चित्र पाहण्या गेलीं  
तिन्ही बालकें स्वयें जिकुनी गड जणुं घेउन आलीं  
चमू चिमकुला काय खेळतो घेई मी कानोसा  
“छकुल्या चल ये ऐक गोष्ट” तो वदे चिमकुला ऐसा  
गुलाब दोन्ही बाजुस, मध्यें चंपक कलिका बसली  
भाऊ दोन्ही दोन्ही बाजुस मधें बहिण सोनकुली  
ऐशा थारें संभाषण मग होई तें आयकिलें  
जसें ऐकिलें तसेंच लिहितें, मन मम मोहुन गेलें.  
“ दूर दूर बघ देश आपुला, हा तर परका प्रान्त  
महाराष्ट्र राष्ट्रांचा राजा, हा तर नुसता सिंह  
पाउस नाहीं पाणी नाहीं हिरवळ ना झाडें तीं

इथें पंरतु आपुल्या राष्ठीं हिरवी हिरवी शेती  
 इथें धेनुंना तृणांकुर नसे, वनांत फिरणें कुठलें  
 म्हणून रस्त्यामधें हुडकती कागद चिंध्या सालें  
 पर्वत उठती, दऱ्या तयांच्या पायीं लोळण घेती,  
 नद्या वाहती, आपुल्या देशीं; सपाट येथें रेती.  
 फुलें हासतीं, परोपरीनें पक्षी गाणीं गाती  
 इथें पहावें, उंटच सारे इकडून तिकडे फिरती  
 इथें सपाटी, वाळू सारी, वाळूचेही किल्ले  
 नच दिसती, परि आपुल्या देशीं पर्वत आणि किल्ले  
 आईनें मज गोष्ट एकदां शिवबाची सांगितली  
 रायगडावर स्वारी होती शिवबाची आलेली  
 कुठून कोणीं पत्र आणिलें कुठून मज ना ठावें  
 परी हासले शिवराया, मुख त्यांचें कधिं नच रडवें  
 बाबा म्हणती शिवबा रडवे नव्हते, नाहिं मराठे  
 रडवे. आपण कोणिंच रडणें शोभत नाहीं येथें.  
 रायगडावर लग्न काढिलें कोणींसें कोणाचें  
 गडबड धांदल होति त्यामधीं पत्र येउनी पोंचे  
 बाळ धाकुटी एकच भाषा 'हुं हुं' ची तिज येई  
 परि मधला बोलका तयाचें भाष्य सुरू मग होई

२

( चंद्रकांत राजाची )

“सिंहगडाची मला माहिती ठाऊक ती भाई  
 भांडत होते लोक त्यावरि कारण नच कांहीं  
 काय मिळाला नाही त्यांना खावयास खाऊ  
 म्हणून होते भांडत तेथें ते भाऊ भाऊ ?  
 कांहीं त्यांना कशी दापिना ती त्यांची आई  
 म्हणून करिती मस्ती अवधी किती दांडगाई ?  
 बांधुन घेती काय कारणें पाठीशीं तारें ?  
 जेवण्यास का जाति गडावर घेउनिया सोटे ?

३

“नाहिं, अशोका खरी लढाई झाली होती ती  
 शिवबाच्या पट्ट्यानें जितला गड लढुनी हातीं  
 चढले रात्रीं दोरी लावुन घोरपडी पाठीं  
 शत्रु जिंकला, मामा लढती भाच्याच्या साठीं  
 सिंधि लोक हे काय त्यांना लढणें तें ठावें  
 त्यांनीं मार्गी उभे राहुनी रसगुल्ले खावे.”



४

( श्लोक )

ऐकुन मग मी सरलें पुढें  
 हृदिं तया धरुनी वदलें, गडे  
 शिशुपदां बघतें अजि पाळणीं  
 देशभक्त निघती उदयीं झणीं  
 मनिं असें अणितां पुर लोटला  
 अश्रु ओघ पुढें मग धावला  
 बालकें प्रभुजिच्या चरणांवरीं  
 घातलीं. प्रभु करो करुणा खरी

—

## शिशुगीतें

—

उंदिरमामा-माऊमावशी

( चालः घनश्याम सुंदरा )

खडबड उठुनी लगबग जाशी सांग मला कोठें  
 धडपड करिति उंदिरमामा बडबडती तेथें  
 चटचट जाउनि पटपट घरितें खटपट करुनी पुरी  
 झरझर धरुनी चेंडू भरभर झेलिन वरचे वरी

बाळासम तो खेळ खेळुनी करमणूक ती करी  
चटकन् मटकन् गटकन् करुनी उदरीं त्याला भरी

—  
गाय

( चालः आनंदी आनंद )

दूध, दही, लोणी खूप  
कोण आपणां दे तूप  
गाय आपुली ती कपिली  
धावुन ये संध्याकाळीं  
पाहुन आपुल्या बाळांतें  
आनंदाचें ये भरतें  
रसनेचें घालुन पाणी  
प्रेमानें त्याला न्हाणी

—  
पोपट

हिरव्या हिरव्या तरू वरी  
हिरवा राघू नाच करी  
पिवळा अंबा खात बसे  
चोंच तांबडी वक्र दिसे

आंब्याला तो वदत पुढें  
 “गंध माधुरी तुझी गडे  
 मोही म्हणुनी चाखीतों  
 झुरकन उडुनी मग जातों”

—  
 कावळा

( अभंग )

“ सकाळीं उठोनी तुझी काव काव  
 भजशीं का देव सांग मला ” १

—  
 “ देवाला भजतों, तुला ऊठवीतों  
 नेम मी पाळीतों सदा त्याचे ” २

—  
 “ काळा रंग तूझा कशानें रे झाला  
 का रे तूं खेळला कोळशांत ३  
 अंगावरी कोणीं ओतीली का शाई  
 काळा काळा होई रंग तूझा ” ४

—  
 “ नाहीं रे शाईचा नव्हे कोळशाचा  
 देवाच्या इच्छेचा रंग माझा ” ५

अगवाई ! हें काय ?

( चालः ला बाई ला )

काय गडे - डोंगर चालत येत पुढें  
 त्यावरतीं - ना झाडी परि लव नुसती  
 पाय कसे ? - इमारतीचे खांब जसे  
 कानाचा - अकार माझ्या सुपलीचा  
 इवलाले - डोळे जणुं झोंपीं गेले  
 दांत कसे - शेतकऱ्याचे फाळ जसे  
 किति लांब - अबब नाक हें कीं खांब  
 मानेचा - घाट असे तो तुळईचा  
 शेंपुट तें - शरिरा नच शोभा देतें  
 कां देवें - रुपडें ऐसें घडवावें  
 खाद्य तरी ? - तोडुनि झाडें उदरिं भरी  
 सांग खरें - ह्या प्राण्याचें नांव बरें

चिमणी

( चालः ला बाई ला )

पाहाटें - चिउताई ती जलदिं उठे  
 इवलालीं - तीं बाळें जागीं झालीं  
 चिंव चिंवती - आई आई तिज म्हणती  
 ती म्हणते - आधि नमुं या देवातें

धनीच तो - झोंपेंतुनि जागें करितो  
 तीं नमती - देवाबापाला पुढती  
 अतां गढे - खेळा पाहूं चोहिकडे  
 शिकविन मी - भुर्कन् उडण्याला नामी  
 परि कोणीं - चुकूं नका वाटे मधुनी  
 कोठ्यांत - परतुन यावें रे उडत  
 वाटेनें - रहा कसे ते प्रेमानें  
 ताईला - बाईला रे सांभाळा  
 तरुवरी - उंच उडा खेळाच परी  
 मी जातें - दाणापाणी मिळवीतें

### गेंडा

घडवंचीवर काय ठेविली गादीची बळकटी  
 दो बाजूंना शेष शिंग ही आणण्यास बळकटी  
 कसा पाहतो बारिक डोळे कानहि उंचावले  
 नाकावरचें शिंग दिसे कीं इंजिन घाटांतलें

### टिपन्याचा खेळ

( चालः आनंदाचा कंद )

हा टिपन्यांचा पहा मजेचा खेळ खेळूं या सर्वजणी  
 तालावरतीं फिरूं रंगणीं आनंदें गाऊं गाणीं ॥ धृ० ॥  
 बोले टिपरी बोल माधुरी भारी अपणां अंतरीं  
 पाय नाचती, मनें नाचती, आनंदाच्या गिरीवरी ॥१॥

## अंक

- चला गडे । घेउन पाळ्या लिहूं अकडे
- १ बघ इकडे । एकाचें मुख डाविकडे
- २ दोन कसे । अर्धा विंचु असाच दिसे
- ३ तीन तरी । डाव्या बाजुस हात पसरी
- ४ चार कसे । मांडी घालुन स्वस्थ बसे
- ५ पांचानें । आ पसरून वरती बघणें
- ६ सहा कसे । तीनाच्या बघ उलट असें
- ७ साताचा । तुकडा पडला जिलबीचा
- ८ आठाची । अकडी प्रभुजी माळ्याची
- ९ नऊ कसे । एकाच्याही उलट दिसे
- १० अतां दहा । एकावरती शून्य लिहा

## ८ प्रासंगिक

### १ कुमारी सीता

## कुमारी सीता

— x —

( कुमारी सीताबाई भागवत ह्यांच्या मृत्यूची बातमी ऐकून )

स्वर्गींची देवता  
कुमारी तूं सीता  
सौजन्य सरीता  
स्वर्गींची तूं

उल्हास अंतरीं  
घरीं तैसा दारीं  
विद्येचे मंदीरीं  
दाटवीला

सरीता आटली  
खिन्नता दाटली  
स्वर्गीं पुन्हां गेली  
स्वर्गींची ती

बापाचा तूं कर  
मातेचा तूं धीर  
भावांचा आधार  
झाली बाई



कर तो तूटला  
 धीर तो झूटला  
 आकाशीचा घाला  
 कैसा आला

अशुभ ही बाणी  
 तप्त तैलाबाणी  
 मृदु जरी मानी  
 ऐकवेना

शोक तरुवरी  
 फुलें हारों हारीं  
 त्यांची घे दुहेरी  
 तूज माला

शारदेचा वीणा  
 तूंहि त्याची तार  
 थोर झणत्कार  
 झाला, गेला.

## ९ संकीर्ण

- १ धुंधुर्मासाची खिचडी
- २ ज्याच्या त्याच्यापुढे तोंड वेंगाडणें
- ३ तिळगूळ

## धुंधुर्मासाची खिचडी

—x—

( ह्यांत निरनिराळ्या विषयांची 'खिचडी' झाल्यामुळे  
लक्ष्मीबाईंनीं हे नांव दिलें असावें )

[ चालः चंद्रकांत राजाची कन्या ]

१

धावपळिमधें दिवस पळाला कुठला तो वेळ  
संध्याकाळीं बघण्या आलें सृष्टीचा खेळ  
काळसागरीं माझ्या पुढतीं भानू उडि घाली  
रक्तांबर तें अंबर झालें धरेवरी लाली  
दिनरजनीचा संधी करण्या संध्या ही आली  
दो हातीं तिज लोडुति रजनी तिजपुढतीं झाली  
अनुरागाची पुसुन काढिते ती अवधि लाली  
संध्यारागावरी आपुल्या सारवणा घाली  
अंगावरतीं काळें लुगडें, काजळ दृष्टींत  
श्वासोच्छ्वासहि सोडी काळा अवघ्या सृष्टींत  
काळे डोंगर काळीं रानें हीं काळीं शेते  
अंधाराचें रान माजलें अवघ्यांच्या भवतें  
माझ्या पुढतीं ध्वान्त पसरला न दिसे मज कांहीं  
आशेचा परि तारा चमके तो माझें देहीं

क्षणोक्षणीचे रंग निराळे मज नव्हते भान  
 मीहि चालले घोपट मार्गी होउनि बेभान  
 कोट्यामधुनी पक्षी निद्रित चोंची पंखांत  
 जगास गाणें गात बैसले दर्दुर पंकांत  
 गा गा गाणीं हवीं तोंवरी मी वदलें त्यांना  
 इतुक्यामधि घूकहि लागला ध्यावयास ताना  
 शब्द त्याचे कार्नी पडतां धडधड हृदयांत  
 अंधारामधि जावें कोठें अवघड रस्त्यांत

२

अंधाराला सारून मार्गे झलालीं डोकीं  
 चमचम करिती अंबर नटलें तें मी अवलोकीं  
 एकामागुन एक एक ही तारावलि आली  
 गगनश्री नटली, गळुं लागे तेज तिचें खालीं  
 सप्तऋषींसह अरुंधती ती तेजोमय झाली  
 सातिजणांमधि सान तनु परी ती दिसुनी आली  
 सहल कराया शनी निघाला गुरुपाशीं गेला  
 शनेश्वराचा प्रताप झुळचा गुरुला आठवला  
 वेळ त्याला गुरुनें दिवला होता प्रहरभर  
 गुरुस परी प्रहराची स्मृति त्या राही जन्मभर  
 घालविण्याला साडेसाती बैतरणीकांठीं  
 संध्याबंदन गुरू करीती, शनि त्यांच्या पाठी

वंदन सरलें, गुरुजी उठले, निघति आश्रमासी  
 कलिंगडें दो भिक्षा घाली भक्त कोणि त्यांसी  
 त्याच सुमारां राजकुमारासह मंत्रीसुत ते  
 शिकार खेळत खेळत रानीं संचरती तेथें  
 खेळत खेळत युवक निघाले पुढें, सैन्य मार्गे  
 झालि चुकामुक गेले निघुनी, शोध न त्या लागे  
 परि गुरु हार्ती कलिंगडांचीं झालीं शिरकमळें  
 रुधिर गळे त्या छाटीमधुनी गुरु स्तंभित झाले  
 हात जोडितों गुरू म्हणे शनि महिमा तव कळला  
 गोष्ट जुनी परि धाक गुरूला अजुनी बसलेला  
 शुक्राची ती झाली नव्हती वेळ, नाहिं आला  
 विंचू नांगी मारी कुंभा, कर्क तोषवीला  
 धनराशीला तुला मिळाली ती कांटेकोर  
 झुकूं न देती इकडे तिकडे कांटा धरि धीर  
 मकर रास ती मीनामार्गे नसे तया वाट  
 मीना मकराची स्वर्गगेमधें पडलि गांठ  
 आकाशींच्या कुरणामार्जी मेष वृषभ चरती  
 पुष्ट होउनी तुष्ट मनार्ने झुंजाया उठती  
 सिंह रास ती घोरत पडली, अवध्यांना घोर  
 केव्हां मारिल थप्पड येउनि बया करिल चूर

कन्या राशिस मिथुन लागला ती जपते भारी  
 घरांत म्हणते शोभा माझी पाय नसे दारीं  
 अढळ पर्दीं जो जाउनि बसला धृव शिकवी ज्ञान  
 सोसा आधीं अपमानातें मग तुमचा मान  
 क्षय वृद्धीची परवा नाहीं शशी सदा शांत  
 राहु ग्राशी कितीक वेळां परी तो निभ्रान्त  
 काम कराया वेळेवरती तो धाडुनि येई  
 राहु ग्रासी म्हणुनी कार्या सोडुन ना देई  
 मासामधुनी एके दिवशीं दिनाकडे जाई  
 बोधामृत जें दिनकर देई तें प्राशुन घेई  
 पिंजान्यानें कापुस पिंजुनि ढिग मोठा केला  
 दो हातांनीं ढकलुनि त्याते शशी पुढें आला  
 अंधकार यापरीं निमाला ध्वान्त लया गेलें  
 मीहि हसलें, तरू तळाशीं शान्त मनें बसलें

३

इकडुन तिकडे वारा धावे बी भरण्यासाठीं  
 तिकडुन आणी नेई इकडुनि करितो लयलट्टी  
 कुणास व्हावें जें जें तें तें आणुनिया देई  
 पराग कोणा, अंबुद कोणा कुणा गंध वाही  
 खंड खंड हे जोडुन देवें पत्रावलि केली  
 जगताला वापरण्या हें धाडुनिया दिधली

दशपर्णाची कौशल्यानें टांचुन धरणीची  
 उडून जाइल काय म्हणुन वर रांग पर्वतांची  
 अवघ्याहुनि जो थोर तयांचा सद्याद्री भाई  
 सान थोर सुखभरें नांदती ते ठायीं ठायीं  
 सद्याद्रीचे बंधु लाडके कितिक चिरंजीव  
 सृष्टिसतीचा त्या सर्वावर सारखाच जीव  
 वैभव अपुलें त्यांना देई भेदभाव नाहीं  
 कुणी बळानें कुणी यशानें कुणी कसा तोही  
 अवघ्यांना दे शेले शाली ती त्यांची आई  
 तृणांकुराचा पदर जरीचा वरती तरुराई  
 शोभा त्यांची कडेवरी घे त्या निर्झर बाला  
 खुळ खुळ पायीं घुंगरु नादे हालवि वेल्हाळा  
 शेल शेलुनी म्हणे तयाला बैस इथें बाळा  
 जाऊं नको तूं इकडे तिकडे बघ बागुल आला  
 बागुलास तो काय भिणारा धीट असे बाळ  
 वक्र गतीनें धावत सुटला काळ न त्या वेळ  
 रानें शेतें बागवणीचे तो तुडवित पाही  
 शोभा गिरिची, कौतुक पाही त्याचें ती आई  
 दृष्ट तयाला होय म्हणूनी तरुवेली पुढती  
 दो हातांनीं फुलें घेउनी दृष्टी उतरीती

दृढ न त्याला व्हावी माझी मी तेथुन फिरलें  
दरिया जवळीं शान्त मनानें जाउनिया बसलें

४

सागरपोटीं गदीं मोठी लाटांची झाली  
काय रुप्याच्या लगडी अपुल्या करितो वरखालीं  
समुद्र कन्या लक्ष्मीबाला लाडिक ती मोठी  
मोती पवळी घेउन आई भरी तिची ओटी  
जाय सासरीं पतिच्या सदनीं लक्ष्मी वेल्हाळा  
ओटीसह ती बसे विमानीं पदर खालिं गेला  
पारिजातका वरुनी जातां ती सांडे ओटी  
मोती पवळीं तींच लटकलीं ही देठोदेठीं  
पारिजातका हसूं लोटलें कीं प्रावृद्धाळीं  
मोत्यासंगें गळूं लागलीं देठांचीं पवळीं  
डाव्या उजव्या बाजुस राहुन उभ्या काय देती  
काव्य देवि वाग्देवी सुमनें तीं माझ्या हातीं  
झाडें झुडपें बागवणीचे मी पाहत येथें  
बसल्या आर्गीं फिरावयाला मी येतें जातें

५

मोहाच्या तो मोहीं पडला पांगारा फोल  
देहाला त्या नसे बळकटी नयनें हीं लाल  
बोरि बाभळी कितिक साबरी झा ठायीं ठायीं  
फळा फुलांनीं नटल्या किति जर कांटे परि देही



शिंदी रुसली बिंदीसाठीं फिदारुनि केंसा  
 म्हणे मला द्या बिंदी आणुनि मग बांधिन केंसा  
 बिंदी कसली दोरी बांधुनी भर बाजारांत  
 विकितों आतां तुला लावितों घरच्या कामांत  
 पिंप्री ती तों झिंझ्या सोडुनि वाटेवरि आली  
 थप्पड बसतां फोड ये तिला लालिलाल झाली  
 तिच्या कारणें जटा वाढवुनि वड जोगी झाला  
 ध्यान कराया आसन घालुनि तो रानीं बसला  
 पिंपळ लागे भाऊ त्याचा त्यास राग आला  
 दो हातांला चोळुनि काढी अग्नीच्या ज्वाला  
 फणसाला हें सारें कळतां उमारला कांटा  
 जांभुळ पडलें काळें ठिक्कर ऊस घेइ सोटा  
 डाळिंबाला हसूं लोटलें तें विचकी दातां  
 शिताफळाचे डोळे थकले हें बघतां बघतां  
 भगवा झेंडा धरून हार्तीं कोंकणांत जाई  
 तीनच पानें चवथें नाहीं, पळस खिन्न होई  
 संपत्तीला उधळुन अपुल्या अंगाला राख  
 लाउन बसला जन त्या भीती म्हणति करा खाक  
 शेराला ती रुई मिळाली सवाईनी शेर  
 त्या दोघांच्या जवळी बसला काळा शिरजोर

पिता तयाचा हिरवा, आई हळदीचा उंडा  
 पुत्र जन्मला काय करंटा सदा काळतोंडा  
 काजू, त्यांच्या भावासम तो सारखीच करणी  
 चिडकें वरुनी गोड अंतरीं करिती मनधरणी  
 कशास नांवे ठेवा यांना उपयोगी पडती  
 दुखल्या खुपल्या साह्य कराया धावुनिया येती

६

सृष्टिसखी ती आनंदानें अवघ्यांना पाही  
 तरू लताही खेळत होत्या त्या ठायीं ठायीं  
 झंझावातें घालित सुटल्या त्या अवघ्या पिंगा  
 वांकविता किती नाजुक तनु ही वाकत ती अंगा  
 आनंदाच्या भरांत येऊन खेळतात फुगडी  
 रंग निराळे दाउनि म्हणती कशी काय लुगडीं  
 कोणि खेळती लपंडाव त्यां कोणि म्हणे दाव  
 गवसे जाळी धरीली पदरा म्हणे घेइ नांव  
 कुणी कुणाला हात जोडिती पसरी पदराला  
 खांधावरती मान ठेउनी म्हणे राग गेला  
 कुणी कुणार्शी सांगत होत्या अपुल्या गुजगोष्टी  
 कोणा जवळी नव्हतें कोणी लावि वरी दृष्टी  
 कोणी मांडव घालुनि त्यांना बसवीती त्यांत  
 फुलें घेउनी कोणी धरिती तयावरी हात

हळदी कुंकू लाउनि कोणी फुलवेली नटल्या  
 कुणी लाविती निढळावरती गुजराथी टिकल्या  
 कुणी कुणावर फेंकित होत्या तीं अपुली सुमनें  
 कुणी कुणाला अर्पित होत्या तीं सोज्वळ सुमनें  
 कुणी पाळणा करुनी कुसुमा निजवीती त्यांत  
 शोंके देतां भिऊन ये तें ठेवित वरि हात  
 कोणी कापुर चोळी अंगा केशर कुणि वाटी  
 भरुनी ठेवी, चंदन म्हणते झिजा परासाठीं  
 कडू जहाला निंब म्हुणूनी कां टांकुन धावा  
 प्रतीपदेला म्हणति आदरें तोही सेवावा

७

पाकासाठीं जन्मच माझा मज त्यांची गोडी  
 वाचकबुंदा ठाउक आहे चव त्याची थोडी  
 बल्लुव गणतो पाक कराया हा पुढती आला  
 दृष्टी आड न माझ्या गेला तो नाही लपला  
 ताडानें त्या पुऱ्या बनविल्या आंत भरी पाक  
 म्हणे हवे जरि तरि कोणाला पुरविनही ताक  
 उंबर अंजिर मोदक करिती सुबक किती नीट  
 न कळे मजला तयांस कोणी शिकवीला घाट  
 भोकर म्हणते काय गोंदणी वर करिशी नाक  
 बुंदी केली केशर भारी चिकट बने पाक

करवंदि म्हणे घ्या ही चाखा फिरवुं नका तोंड  
 रानिवनीची भिल्लिण मी परि करितें मिरबोंड  
 आम्रतरु म्हणे चाखा या मीं केलें श्रीखंड  
 दही टांगलें पहा वरी तें दूध करुन थंड  
 रामफळी ती करि बासुंदी सुंदर किति दाट  
 गाई नाजुक पाठि तांबड्या बांधील्य़ा नीट  
 खिरणी अवघ्यामधें ओरडे मीही सुगरण  
 ख्रिस्ती लोकां जवळीं शिकलें 'कलकल' पक्कान्न  
 साधी भोळी पपई म्हणते सार्धें मी वरण  
 करितें, त्याही साठीं येती कितिक मला शरण  
 जोडुनि हातां पपनस म्हणतां मी करितें भात  
 नको नको मोसांबि म्हणे तव जाड किती शीत  
 मीच करीतें बारिक सुंदर बघ आतां भाता  
 कोण धरीतो पुढें येउनी तो माझ्या हाता  
 माड सांगतो मी सर्वांना पाणी पुरवीन  
 अंगूराला साख्ख कराया मी बोलावीन

## “ ज्याच्या त्याच्यापुढें तोंड वेंगाडणें ”

( “ रे रे चातक सावधानं मनसा मित्र क्षणं श्रूयताम्, ” ह्या भर्तृहरीच्या श्लोकावरून )

( दिंड्या )

चातका तूं दे लक्ष ऐक माझें;  
गगन अवघें हें घनव्याप्त साजे,  
परी सारे सारखे नच उदार,  
नको समजूं प्रत्येक मेघ थोर.

किती भूमीला जलें भिजवितार्ती,  
किती वाया तोऱ्यांत गर्जतार्ती  
जया बघशिल त्याजवळ नको जाया  
दीनवाणीनें याचना कराया.

( बालबोधमेवा; १९१० मार्च )

## तिळगूळ

( शार्दूलविक्रीडित )

नाहीं तूं जवळीं म्हणून सखये वाटे मना खिन्नता  
देतें प्रेमभरें तुला तिळ गडे धाडून, घे हे अतां  
दूरस्था अपणा कधीं जरि कडू ना गोड ये बोलतां  
ठेवी अंतरिं नित्य भाव मधुसा, सारीच ही गोडता

होतों आपण बालिका चिमुकल्या ह्याही तिळासारख्या  
आतां ते दिन जाउनी स्मरणिच्या गोष्टी जहाल्या फिक्य  
येथें चित्र परी उठून दिसतें ह्या काल-वाफेवरी  
प्रेमें घेउन बैसली जननि ती दोघोस पाटावरी

बोले दोघि तुम्ही अशाच चढवा पाका तिळाभोंवतीं  
वाढा सत्वर व्हा मधूर अवघ्या आदर्श लोकांप्रती  
गोडीहि जरि अंतरीं वरिवरी कांटा उभा पाहुनी  
दुष्टावा करण्या धजो न किमपी तो दुष्ट लाजो मनीं

## १० रूपकात्मक

- १ नवरा
- २ सबत
- ३ सासुरवास

“ १८९९ सालीं माझे वडील ख्रिस्ती झाले. त्या वियो-  
 गामुळे आई कविता करू लागली. त्या वेळेस तिने पुष्कळ  
 ‘गाणी’ केली व ‘मुलीबाळींना’ म्हणायला शिकविली. तीं खरीं  
 खरीं स्त्रीगीतें होती, पुढील गीतांपैकी ‘नवरा’ ‘सवत’ व ‘सासुरवास’  
 हीं ह्या गाण्यांपैकीं गाणीं आहेत. पुढे १८९९ मध्ये आम्ही  
 अहमदनगरास येऊन राहिलों तेव्हां आईचें कविता करणें जे बंद  
 झाले आहे. तें जवळ जवळ १९१९ पर्यंत, १९१९ सालीं  
 टिळक वारले होते व लौकरच माझ्या पहिल्या मुलाचा जन्म  
 झाला. हा मुलगा जन्मल्यानंतर आईने पुष्कळ कविता लिहिल्या,  
 ख्रिस्तायनाच्या ७६ अध्यायांपैकी ६४ अध्याय तिने लिहिले  
 आहेत, पहिले ११ अध्याय टिळकांनीं लिहिले. कवि गिरीश  
 ख्रिस्तायनाच्या प्रस्तावनेत आईच्या कवित्वशक्तिबद्दल म्हणतातः  
 “ त्यांना करुण, वत्सल व भक्ति हे रस अतिशय चांगले स-ध-  
 तात. त्यांच्या लेखणींत कथनकला ओतप्रोत भरून राहिली आहे.  
 ‘स्मृतिचित्रे’ रेखाटतांना एकदां तिने आपला प्रभाव सिद्ध केला  
 आहे, त्यांच्या ठिकाणीं माणुसकी वास करीत होती.”

## नवरा

( चालः केशवकरणी )

गुणरूपानें मनासारखा परंतु झाला पिसा

साजणी हा तरि नवरा कसा

काय बोलते सुबुद्धि ऐका प्रपंच माझा कसा



विवेक नवरा मर्शि बोलेना हा बघ रुसला असा  
 यानें कसें मला सोडिलें—हो  
 दुध म्हणुनी विष पाजिलें  
 कंठावरती हात ठेवुनी मांडिलि ही हेळणा  
 साजणी तुम्ही मनामधिं अणा  
 आशा, मनिषा, तृष्णा, जावा ह्या माझ्या तिघिजणी  
 ममता साखू करिती माझ्या जीवाची खेळणीं  
 हा क्रोध खाटिक सुरा हो  
 हा निर्दय मम सासरा  
 नाहिं विसांवा षड्रिपु दीरां, गांजिति रात्रांदिनीं  
 तरी नच पाही पति दुंकुनी  
 मायबाप तर दूर राहिलीं विवेक नवरा असा  
 न कळे माझा जीव वांचला आजवरी गे कसा  
 भ्रान्ति वन्सांनीं गांजिलें  
 क्रोधाच्या हातीं दिलें  
 \* किती गांजणुक सोखूं बाई फारच मी कष्टलें  
 शेवटीं निसंग मी जाहलें.  
 सासुसासरा खुशाल आतां शिमगा करिती घरीं

\* पाठभेद

ह्या क्रोधानें फार मांडिली ही माझी हेळणा ।

साजणी तुम्ही मनामधिं अणा.

जीवशिवाचें ऐक्य पावुनी मी तर सुटलें बरी  
 रामनामाचा अमृत पेला  
 निजबदनीं स्वीकारिला  
 सुरकुळ टिळक श्रीनारायण चरणिं लीन जाहली  
 लक्ष्मी 'मी तूं' हें विसरली

## सवत

( चालः वैशाखमास )

साखि रात्रंदिन छळित मला सवत कल्पना ॥४०॥

घोर तमोजाल विणुनि गुंतवी मना  
 नित्य नवी उदित कला दावि मीपणा  
 नेई मज दूर वनीं रुक्ष कानना  
 कटि कसुनी नीट उभी मजशि ताडना

फिरवि मला गरगर ती दावि रंगणा  
 कष्टवितां मजशि सदा कैशि राहिना  
 आशेचा किरण जरा रंजवी मना  
 लोडुन तिज येई पुढें तूं दयाघना

## सासुरवास

सासुरवासी । मी जन्मापासुन ऐशी ॥४०॥

घोर सासरा माझा भारी  
 घेउन बडगा बसला दारीं  
 जाउं देइना मज बाहेरी  
 छळणुक सारी । गांजलें पुरी संसारीं

ममता सासू मजला छळिते  
 जागोंजागीं मजला खिळिते  
 इकडुन तिकडे मी नच हलतें  
 माझ्या मार्गे । ती येई वेगें वेगें  
 × × ×

नणंद माझी सानच बाई  
 मजला केव्हां सोडित नाहीं  
 किती जरी मी हकलुन देई  
 चिंता चतुर! चालते कशी तुरतूर

## ११ भक्तिभाव

- १ बरें हें झालें
- २ ही रसना
- ३ कारागीर
- ४ ऊठ माझ्या जिवा
- ५ अमृत विषाचे कुंभ मजपुढें
- ६ शांतिसदन
- ७ प्रभुपाळणा
- ८ देवाला शरण जाणें
- ९ अभंगाज्जलि
- १० ख्रिस्तायनांतील निवडक उतारे

## बरें हैं झालें !

( चालः घरी रे ध्यानीं )

( मंदिरें हीं पवित्र प्रार्थनास्थाने ठेवावीं अशी यहूदी लोकांची अपेक्षा, परंतु घर्माच्या नांवाखालीं तेथे पुष्कळ अनिष्ट प्रकार येशूच्या वेळीं शिरले होते, तेथें ऋयविक्रय चाले, सराफ आपले अडे उघडून पैशाची देवघेव करीत, येशूनें एकदां एक कोरडा घेऊन हे लोक मंदिरांतून हुसकून दिले होते, व सराफांच्या चौरंगांची उलथापालथ केली होती. )

बरें तरि झालें । प्रभुपायीं मन मम रमलें धृ०

मीहि सराफिण ती पूर्वींची

आवड मजला त्या धंद्याची

घेउन कसणी ती लोभाची

देवळीं गेलें । साफल्य जणूं जगिं झालें

टाकुन स्वार्थाचें तें पोतें

त्यावरतीं मी बसलें होतें

चतुरंगीं त्या चौरंगातें

पुढें मांडीलें । प्रभु पायीं मन हें गेलें

उघडुनि टाळें संदूकीचें

नाणें काढित अहंपणाचें

कर माझा खालींवर नाचे

मीं मीं केलें । प्रभुपार्यीं मन हें गेलें  
 स्मितवचनाची झिलई वरुनी  
 आंत परी दुष्टाइ मिसळुनी  
 गर्वाच्या त्या चवडी रचुनी  
 विक्रिस बसलें, प्रभुपार्यीं मन हें गेलें  
 मंदिर देवाजीचें कोठें  
 हृदयिं आपुल्या फारच मोठें  
 श्वासोच्छ्वासीं येउन भेटे  
 नाहिं मज पटलें, । प्रभुपार्यीं मन हें गेलें  
 प्रभु माझा तो धाउनि आला  
 खुरदा माझा फेकून दिधला  
 चौरंगहि पालथा पाडिला  
 रिती मी झालें । प्रभु पार्यीं मन हें गेलें

( कराची )

## ही रसना

( चालः बाळा जो जो रे )

प्रभु तूं ये रे ये । लवलाही  
 लाव मला तव पार्यीं ॥४०॥  
 संकट मज वाटे । जें मोठें  
 जिच्या मुळें जगिं तोटे

ती बघ काशि-डुलते । डुलवीते  
 जगताला भुलवीते  
 ती नच कर्धि दिसते । परि असते  
 एके ठायीं वसते  
 ती बघ ही रसना । रस नाना  
 बाहिर ढाकी वमना  
 हिजला सांभाळी ह्या पुढतीं  
 ठेव तुझ्या ही हातीं  
 सोडिव हे धंदे । आनंदें  
 लाव तुझ्या बा छंदें  
 ( कराची २०-५-१९२३ )

## कारागीर

( समुद्राच्या वाळवंटांत पाण्याशेजारीं असलेल्या ओलसर वाळूंत आकृती व वेलुबुट्टी उमटलेल्या दिसतात, ज्या जलचरांच्या हालचालीमुळे हा चित्रकला निर्माण होते ते मात्र सहसा दिसून येत नाहीत. )

हा गालीचा सांग कुणीं बनवीला  
 कारागिर कोठें गेला ॥धृ०॥  
 बघ तरुवेली, फळें, फुलें तीं दिसतीं

हे पतंग भवतीं भवतीं !  
 हे पशुपक्षी नानाविध काढियले  
 हें ज्ञान कुठें मिळवीलें ?  
 ही सृष्टि रेखिली त्यांत  
 सुंदरशी मानवजात  
 हा कलाकृतीचा हात  
 अदृश्य परी, कलावंत का लपला  
 कारागिर कोठे गेला ?

हे वाळूचें काम सागराकांठीं  
 आनंद उपजवी पोटीं  
 हें बघतांना कुणी तयाला गाती  
 कोणी परि तुडवुन जाती  
 नच क्षिति त्या कलाकराला  
 कोणी जरि आला गेला  
 निंदिला वंदिला त्याला  
 निष्काम जणूं कर्म ! कलेच्या लीला !  
 कारागिर कोठें गेला ?

परि हीच कला पाहुन सागर खुलला  
 हासला नाचला डुलला  
 कुणि कांहीं म्हणो रसिकवरा त्या कसला  
 संकोच जगाचा कुठला



तो धांवत धांवत आला  
 शिरिं हृदयीं उचलुन धरिला  
 पट सारा पुसुनी गेला  
 रत्नाकर हें पाहुन अति गर्हिवरला  
 कारागिर कोठें गेला

## ऊठ माझ्या जिवा

आतां ऊठ माझ्या जीवा  
 उजळनी भक्तिभावा  
 लावूनीया ज्ञानदीवा  
 प्रभू आला ओळखावा ॥धृ०॥

रात्रीची ही शोंप फार  
 तुला लागली अधोर  
 किती वेळां हालवीतो  
 प्रभू प्रेमें ऊठवीतो

मोहाचीही सुखशय्या  
 तुला फार तिची गोडी  
 घेसी करीं पांघरूण  
 आऱसाची शालजोडी

नैराश्याच्या रे जांभया  
 किती देशी वरीवरी  
 खेदाचे ते आळेपीळे  
 घेशी किती तूं शरीरीं  
  
 सुखशय्या मऊ वाटे  
 बरी नाहीं तुज साठीं  
 पांघरूण तें झाडुनी  
 गुंडाळून ठेव खुंदी  
  
 बघ भानू आला बरी  
 खरोंखरीं उजाडलें  
 दारीं वाट पाही प्रभू  
 तेज त्याचें प्रकाशलें

( कराची )

## अमृतविषयाचें कुंभ मजपुढें

( रविवार ता. १२ रोजी रात्री चुलीवर तापत ठेविलेल्या  
 दुधांत पारु पडून शिजून निघाली, हें सारें आमच्या ध्यानार्त  
 आणून परमेश्वरानें माझ्या कुटुंबांतील सर्वांचे प्राण वांचविले.  
 नाहीं तर मी दूध घेत नसल्यानें माझ्याखेरीज सारी माणसें १३  
 तारखेला मृत्युमुखी पडलीं असतीं. खिस्ती घर्मात टिळक

घराण्यांती माझ्या खेरीज कोणीहि उरले नसतें. पण माझें उरलेले  
आयुष्य आणखी दुःखांत पडूं नये अशी त्या जगन्माउलीची  
योजना होती. हे उपकार मी कसे फेडूं ?

ल. ना टिळक )

### अभंग

नीरशा दुधांत पल्लिका पतन  
त्यांतुनी जतन करी देव  
संकटाची माळ घेऊन विक्राळ  
आला होता काळ दारापुढें  
धावली माउली, केवढी तयारी  
होती विघ्नहारी दृष्टीपुढें  
तुझा हात वारी नेई तिला दूरी  
तोडिलीसी दोरी मालेची त्या

+ + + +

शुद्ध चषकांत पय भरलेलें  
जहर पडले प्राणहारी  
काय त्या गोरसा कोण विचारते  
जाऊ द्या परते गटारांत  
पाहुनी प्राशी का तया कोणी वेडा  
पाहुनी का खोडा पाया घाली

अमृत विषाचे कुंभ मजपुढें  
 कल्पनेंत बुढे जीव माझा  
 बुडत्याला हातां देऊनी काढीले  
 उपकार झाले दासीवरी

( ज्ञानोदय, जुलै १६, १९३१ )

## शान्तिसदन

( चालः देइं असें वरदान )

( आमच्या शान्तिसदनांत आम्हीं गृहप्रवेश केला तेव्हां हें  
 गाणें रचिलें, ल. ना. टि. )

दे दे हें वरदान दयाळा दे दे हें वरदान  
 तूं रहा येउनी इथें, कर खरें, 'शान्तिसदन' अभिधान-धृ०

होवो सौख्यनिधान खरोखर होवो सौख्यनिधान  
 हे प्रभो दयाळा तुलाच राहो ह्याचा हा अभिमान

हें सदन शान्तिचें नाम सार्थ तूं करीं

तव कृपा असूं दे सदैव त्याच्यावरी

अप्रीति अशांति पळोत भिउनी दुरीं

गाउं तुझें महिमान दयाळा गाउं तुझें महिमान

तूं रहा येउनी इथें, कर खरें, शान्तिसदन अभिधान

होवो तव सन्मान गृहीं ह्या होवो तव सन्मान  
 तव नाम स्मरोनि जळोनि जावो अशुद्ध अप्रिय घाण  
 हे चहुं बाजूंचे स्तंभ प्रभो दृढ करीं  
 तव करुणेची मग छाया वरती धरीं  
 या गृहिचीं बाळें, घर त्यांना तूं करीं  
 तूंच ह्यांतला प्राण खरोखर तूंच ह्यांतला प्राण  
 तूं रहा येउनी इथें, कर खरें, शांतिसदन अभिधान

( २९-७-३२ नाशिक ज्ञानोदय जून २, १९३२ )

## प्रभु-पाळणा

हलवी मना प्रभु-पाळणा हा  
 त्यजुनी सुखातें वरि यातनांना  
 हलवी मना-धृ०

पराकारणें जो झिजवी तनूतें  
 यशोगान त्याचें मुद्दें गात गाना  
 हलवी मना

हलवी मनातें हलवी जनातें  
 प्रभुपार्यि लावी इतरां जनांना  
 हलवी मना

जगाच्या हिताचा प्रभु-सेवनाचा  
असा पाळणा जो पटवी मनांना  
हलवी मना

( स्त्री मासिक, ऑगस्ट १९३३ )

## देवाला शरण जाणें

( चाल: “ वा थांब । कृपा कर थांब । घडीभर अब्दा.” )

मी दीन जाहलें लीन तुझ्या चरणीं रे;  
तूं आश्रय माझा ! समाधान सारें- धृ०

दे मला लाभ आपुला, प्रभो, दुःखार्शी;  
हा लाभ लोपवी सकल अनिष्टार्शी

तव छंद खरा सुखकंद ! तूंच मम माय,  
तूं बाप ! सखा तूं ! तूंच बंधुराय !

( बालबोधमेवा. फे १९०८ )

## अभंगाञ्जलि

माझे बडील नारायण वामन टिळक वारल्यानंतर त्यांचें बहुतेक महत्वाचे काम माझ्यावर पडलें. त्यांतीलच ज्ञानोदयाच्या संपादनाचे एक काम होतें. टिळकांनीं ज्ञानोदयांत सुरू केलेलीं 'अभंगाञ्जलि,' 'ख्रिस्तानुवर्तन' 'नवीन इसापनीति' वगैरे सदरे पुन्हा सुरू करण्याचें ठरलें. मी अभंग लिहूं लागलों. आणि एखाद्या अंकांत माझे अभंग आले नाहींत, कीं ते आई लिही, तिनें लिहिलेले बहुतेक अभंग असे लिहिले गेले आहेत.

पुढें आठ महिने काम केल्यावर मी ज्ञानोदयाचें काम सोडून दिलें, म्हणून तिचे कांहीं अभंग प्रसिद्ध झाले नाहींत, पुढें दिलेले अभंग कांहीं जुने व कांहीं १९२०-२१ साली ज्ञानोदयांत छापलेले आहेत, अभंगाच्या शेवटल्या ओळींत दासाची दासी असा स्वतःबद्दल कवयित्रीनें उल्लेख केलेला आहे, टिळकांनीं आपल्या अभंगाञ्जलीत प्रत्येक अभंगाच्या शेवटीं स्तत. चा दास म्हणून उल्लेख केलेला आहे, अर्थात त्या दासाची कवयित्री ही दासी असा येथें अभिप्राय आहे, — दे. ना. टि.

१

वसंतग्रीष्मांला सदा येतें हासूं  
पर्जन्याला आसूं कां तें यावें

पर्जन्याचें आसूं कोण पुसणार  
 कोण पोसणार भुकेल्यांला  
 सोडीतो पर्जन्य आंसवांच्या धारा  
 तेव्हां वसुंधरा नटते ना ?  
 गाळीतो पर्जन्य आसवांचें पाणी  
 नटली अवनी फलभारें  
 पाहूनी फळांतें जन नाचताती  
 तूज गाणीं गाती आनंदानें  
 सृष्टीचा जो नेम तोच मानवाला  
 हिवाळा, उन्हाळा, पावसाळा  
 मींच एकलीनें निराळें कां व्हावें  
 हसावें रडावें नेम तूझा  
 हासतें रडतें तुला गाणीं गातें  
 नवल कोणतें झालें सांग  
 दासानें दासीला काय शिकवीलें  
 नाहीं यश आले रडक्यांना

( ज्ञानोदय मार्च १८, १९२० )



२

चंदनाचा जन्म पर्वतावरती  
 इंधनाला नेती भिल्लनारी  
 नेऊनी तयातें भोजन सारीती  
 उदर भरीती मूर्खपणें  
 नाहीं त्यांना ज्ञान नाहीं ती किंमत  
 पुढें होती हात जाळण्याशीं  
 तसा माझा प्रभू दुष्टांनीं गांजीला  
 खांबाला खिळीला स्वार्थासाठीं  
 स्वार्थाला सांडूनी प्रभू जर्गी आला  
 त्यानें कित्ता दिला शिष्यजनां  
 बसूनी राहीन शिष्यांच्या दाराशीं  
 तूंच शिकवीशी गिरवाया  
 दासाच्या दासीचे लाड पुरवीणें  
 दुसरें मागणें काय मागूं ?

( २५ मार्च १९२७ )

३

सर्व तुझे हीरे सर्व हीरकण्या  
 मला कांचकण्या कां दिसाव्या ?

जिवा होतां त्रास मना वाटे जांच  
 तुला नाहीं कांच त्रास झाला ?  
 तुझ्या त्रासाकडे नाहीं मन माझें  
 सदा माझें ओझें पुढें तूझ्या !  
 'म्या म्या' करीतांना सायंकाळ झाली  
 झांपड पडली 'म्या'ची आधीं  
 रात्र मीपणाची कधीं संपणार  
 दिन तो येणार कधीं तूझा  
 तुझीया दासाची दासी विनवीते  
 प्रकाश मागतें तूझा आधीं

( ज्ञानोदय १ एप्रील १९२० )

४

जीवा तळमळ मुखा नाहीं खळ  
 तुझ्यावीण बळ कोण देतें  
 तुझीया बळानें वर चढवीशी  
 उतरोनी घेशी परिक्षेंत  
 परिक्षेकारणें घर तें सोडिलें  
 बापानें धाडीलें शिकावया

नित्य नवे धडे जीविताचे पुढें  
गुणीती आंकडे दास दासी

---

५

नाहीं आवंतीलें चालुनीयां आलें  
पाहिजें तें केलें तूंच त्याचें  
आलीया गेल्याची नको चिंता मला  
पुरवीता झाला आजवरी  
मार्गे पुरविलें पुढें पुरवीशी  
प्रेम तें मजशीं तुझें ठावें  
तुझीया प्रेमाची दीनाला साऊली  
जगाची माऊली तूंच खरी  
'जगाची तूं चिंता करितोस स्वामी'  
दास शिक्वोनी गेला दासीं

( ६ मे २० )

---

६

संवसार केला जीव पाखडीला  
प्रभू घालवीला वाऱ्यावरी

पाखडीतां काय हातां आलें फोल  
 कळं आलें मोल माझें मला  
 माझी ती किंमत फुटकी कवडी  
 तुजला आवडी परी माझी  
 माझिया कारणें सदा धांव घेशी  
 पाठीशीं राहशी सदा माझ्या  
 मागें वळ्ळनियां पाहीयेलें मुख  
 मनाला तें माझ्या सुख झालें  
 निंदास्तुती यांची दाद नसे तूतें  
 कळं आली मातें चूक माझी  
 दासाची ही दासी आली पयांपाशीं  
 घालविशी कैसी सांग आतां

७

बालपणीं आई गेली । तेव्हां कोणीं चिन्ता केली  
 बाप गेला पैलतीरां । तेव्हां कोणीं दिलें धीरा  
 गेलीं भावंडें त्या वाटें । तेव्हां कोणा प्रेम दाटें  
 सेवितांना पती गेला । त्याचा हात तूं धरीला  
 मी तों दारींची भिकारी । माहेराला तूझ्या घरीं  
 कोण माझा बडेजाव । तुझ्यापायीं दिला ठाव

तुझे माझे आतां नातें । जग सांभाळो जगातें  
जातां देवाजीच्यापार्शी । धन्य दासाची हो दासी

—

८

संकटें बापूडी काय तुजपुढें  
खेळण्याचे खडे आम्हा हातीं  
व्हावें तसें त्यांना करूं खालींवर  
झुगारूनी दूर देऊं आतां  
विखरूनी देऊं पुन्हां जमा करूं  
मुठीमध्ये धरूं तूझ्या बळें  
देतां झुगारूनी जाती बारा वाटे  
निरजीव गोटे प्राणहीन  
दासाची ही दासी तुला विनवीते  
संकटें मागतें, तूजकडे ?

—

९

आमुचा तो बाप आम्हा काय कमी  
तयाचेंच धामीं राहूं आम्ही  
प्रेमाची संपत्ती अखंड तो सांठा  
पाहिजे तें लूट्टा येवोनीया

भरलीं भांडारें मग दूर कां रे  
 लुटा लुटा सारें पाहूं आधीं  
 लुट्टनी तियेची देवघेव करा  
 कृपण उदारा सोडूं नका  
 जोडूनियां हात दासी पुढें आली  
 रिती न धाडीली कधीं त्यानें

( ज्ञानोदय १४-१०-२० )

१०

पाळीलें पोशीलें, वत्सा वाढवीलें  
 कान टौकरीले मातेवरी  
 चोंचींतून चारा बाळपणीं खाई  
 उडोनिया जाई पर येतां  
 पैसा अधिकार मान येतां हातीं  
 आम्ही ह्याच रीतीं वागतसूं  
 देवा तूं न येशी तरी आम्ही प्राणी  
 पशू पक्ष्यावाणी बनणारे  
 लोटांगण पायीं घालिते ही दासी  
 काढी रे आम्हांसी पशूंतूनीं

११

चंद्र सूर्य ग्रह तोरे । आम्हां शिकवीती सारे  
 एक्या गृहीं राहण्याचें । नको भांडण कोणाचें  
 आम्ही भांडूं थोडेकेसें । तुम्ही चुरडाल खासे  
 जो जो नेम देवें दिला । तो तो आम्हीं सांभाळिला  
 सारीं देवाचीं लेकरे । भेद 'मी तूं' ऐसा कां रे  
 देवा दासी विनवीते । मोड तोड ह्या भेदातें

( ज्ञानोदय २८-१०-२० )

१२

रडक्यांच्या माथां सदा पायपोस  
 देती सावकाश स्वार्थी जन  
 नेम हा जगाचा अनुभवा आला  
 रडूं मी कशाला ? कोणासाठी ?  
 रडण्याचें काज नाही तें उरलें  
 हातांतून गेलें तेल तूप  
 येथें सख नाही तेथें तें कोठोनी  
 रडक्याचे दोन्ही हात रीते  
 रित्या हातीं काय कशाला रडणें  
 दासीचें म्हणणें सर्वालागीं

## १३

सेवा संपतांना नावाड्या तो गेला  
 सोडुनी नावेला भवार्णवीं  
 नावेचें तें शीड सदा फडफडे  
 नाव कोणीकडे हेलकावे  
 भवार्णवीं नौका डळमळताहे  
 वारें किती वाहे सोसाड्याचें  
 तियेचें सुकाणूं कोणत्या दिशेला  
 फिरेल दयाळा तूला ठावें  
 पुढें तो खडक मार्गें देवमासा  
 आडवील कैसा कोण्या वेळीं  
 कठीण अवस्था डोळीयाचे पुढें  
 शीड फडफडें हृदयीचें  
 सागर खवळे गर्जे मेघवाणी  
 पळालें तें पाणी तोंडाचेंही  
 दयाळे माऊली पाहूं दे ग डोळां  
 पांची प्राण गोळा झाले माझे  
 मोठ्या आर्तस्वरें फोडिली किंकाळी  
 माउली धांवली पहातें तों  
 बोलली ती मला कां ग घाबरीशी  
 कोणाला तूं भीशी सांग मला



सोडीलें मीं नाहीं, नाहीं सोडणार  
 सदा राहणार तूजसवें  
 वत्सले, माऊली राहा मजपार्शी  
 दासाची ही दासी वीनवीतें

—  
 १४

वेळोंवेळीं चिंता खेळे छुपापाणी  
 तिनें नेत्रें दोन्ही झांकीयेलीं  
 भाव, प्रेम, आशा बंधु ह्या भगिनी  
 बसती लपोनी कोठें तरी  
 आनंद, उल्लास शेजारचीं पोरे  
 जाती चार घरे लपण्याला  
 फिरुनी फिरुनी डाव मजवर  
 भाबडी ही पोर पुन्हा फसे  
 दासाची ही दासी खेळुनी दमली  
 विसांवा पावली तुझ्या पायीं

( ज्ञानोदय ११ नवंबर १९२० )

—

१५

कन्या मी लाडकी देशी भातकूली  
 जग कुरकुली भरुनीया  
 खेळतां खेळतां पाखडीन जीव  
 घोळं दे सजीव प्रेम तूझें  
 घोळितां घोळितां वेंचुनीया खडे  
 जीवीत बापुडें झुगारूं दे  
 झुगारितां त्याला पुढें निरंतर  
 ख्रिस्ताच्या समोर राहो दासी

( ज्ञानोदय ३० ऑक्टोबर १९३० )

१६

देवा जगवाटीकेंत दया ताटवे फुलूं दे  
 ममत्वाचीं सुमनें तीं तयांवरी दर्बळं दे  
 अंशुमाली तापला हा जीव घाबरुनी गेला  
 बृक्षलता करपल्या पाहा पाचोळा हा झाला  
 धाव धाव दयाघना दे दे जीवना दे आतां  
 तूझ्यावेगळा कोणता माळी हीचा कृप वंता

( ज्ञानोदय २७ नवंबर १९३० )

१७

संसारिं एकली आजवरी होतें । परी रितें पोतें सदा माझें  
 थकलें भागलें देहा कष्टवीलें । ना परी भरलें पुरें कधीं  
 भरलें तें नाहीं, नाहीं भरणार । रितें रहाणार सदा ऐसें  
 एकाचा संसार काय कधीं झाला । अनुभव आला बुधजना  
 आतां संवसार एक तुझा माझा । नको आतां दूजा कोणी मध्ये  
 आल्लूतेबल्लूते मधेच येऊनी । पोतें रीचवोनी जाती माझें  
 म्हणून सांगतें हात माझा घर । भरीं भरपूर भांडारातें  
 भांडारें आमुचीं भरीं हृदयांचीं । दुर्जी तीं कशाचीं नको नको  
 एवढाच हट्ट पुरविशी माझा । दासाचा तूं राजा, दासी त्याची

१८

मी तों चाकर मोलाची । दासी तूझीया पायाची  
 माझ्या हातीं माल दिला । कोण्या रीतीं जपूं त्याला  
 माल तूझा मोलवान । कसें करावें जतन  
 मला कांहीं ज्ञान नाहीं । तूं च शीकीव गे आई  
 आई वीणें लेंकुराला । कोण शीकवीता झाला

१९

हृदय कासारिं तुडुंब हें जळ  
 लाउं कोण्या बळ कोण्या पाठी

फोडितें बंधारा सोडितें मी पाट  
 तुझ्या पुढें नीट माझ्या बापा  
 धरीतें मी दार लावीतें सारणी  
 करीतें पेरणी पुढें तुझ्या  
 माझ्या पेरणीला येवोत कणसें  
 पाहोत माणसें जगांतील  
 सांभाळ पांखरें, नसो त्या क्रीड  
 वाढीव तूं पेढ माझे बापा

—

२०

अश्रूंचा विटाळ नको नयनाला  
 नको ती मनाला हूरहूर  
 हुरहुरीमुळें नयनाला पूर  
 पुरांतच दूर प्रभू जाई  
 नको जाऊं दूर आठवीन त्याला  
 तूझ्या त्या बळाला मागूनीया  
 दे दे तुझे बळ दासी ही निर्बळ  
 तुझ्या हातीं कळ सारी माझी

—

२१

तूं माझा सागर, सान मी घागर  
 भरीं भरपूर माझे आई  
 तूं तों माझे जळ, मला तुझे बळ  
 कोण म्हणे मळ माझ्या अंगीं  
 तूं तों आम्रतरू मी तूझी कोक्रीळा  
 कोण माझा गळा थांबवीतो  
 तूझी गोड फळे, माझी गोड गाणीं  
 जगताच्या कानीं जावो बापा  
 माझ्या आलापांनीं कळो जगताला  
 वसंत हा आला दासी म्हणे

२२

वेढ्या माझ्या जीवा कंठी परदेश  
 दूर तुझा देश राहीयेला  
 जेथे तुझी आई तेथे रे सदन  
 दिलें तूज धन नीघतांना  
 बोले प्रेमभरें सांभाळीं तूं बाळे  
 संपत्ती वेल्हाळे तुझी झाली

घेऊनीया सारें सासरीं निघालें  
 तेथेंच रंगलें अहर्निश  
 विसांव्याकारणें सदन पाहतां  
 आठवण होता आईचीं त्या  
 मग म्हणे जीवा दूर तुझी आई  
 मुरडून पाही माहेराशी  
 असोनीया धन सदा निरधन  
 तुझें लुळेपण बरें मना  
 असोनीया शेती, कोठारें तुझीं तीं  
 सदाचीच रितीं पडलेलीं  
 असोनीया विद्या न ती देई ज्ञान  
 असलें अज्ञान तुझें मना  
 असोनी जातीचे कोणी न विचारी  
 कुळाच्या आहारिं जातें कोण  
 न ये कधीं कामीं सांठवीली पुंजी  
 पाठीशीं देवाजी म्हणे दासी

—  
२३

ऊठ वेढ्या जीवा, करीं देवघेव  
 सांपडली ठेव तुला त्यांची

खरीं खरीं नार्णी ठेव जगापुढें  
 गरीब बापुडे उचलीती  
 तया बापुड्यांची येवो जरा कींव  
 करी देवघेव प्रेमाची तूं  
 जितुकें देशील तितुकाच तूला  
 मिळे मोबदला दासी सांगे

२४

मना हूरहूर सदा चिंतातूर  
 तुला वाटे दूर देव का रे ?  
 कधीं का मारुत गेला परदेशा  
 तुझी दूरदशा झाली काय ?  
 कधीं का मेघांचा झाला होता रोष  
 तुला तो प्रदोष होता सांग !  
 नाहीं का तो भानू उगवला वेळीं  
 तुला निद्रा बळी ठेवी सांग  
 काय भेदिनीनें विचकले दांत  
 म्हणून मनांत चिंताक्रान्त  
 पंचमहाभूतें देवाजीचे दूत  
 तुज सांभाळीत नाहीं सांग

२५

तुला भेटावया नको नांव गांव  
 हवं तेव्हां यावं तुझ्याकडे  
 तुझ्या दारावरीं नलगे ठोकणें  
 हवें तेव्हां येणें तुझ्याकडे  
 तुझ्याशीं बोलाया नाहीं उपचार  
 प्रेमाचा आगर तुझ्याकडे  
 बोलूं घडीभरी सांगूं हितगूज  
 जाईल सहज याभिनी ही



## १२ राष्ट्रीय

- १ आजवरीं जरि भटकत फिरलों
- २ कारागृह
- ३ बिरडें सोडा
- ४ स्मरा आपुल्या गुरुवरा
- ५ पुढें सरणार
- ६ जागा रे
- ७ वंदे मातरम्

१९३० सालीं प्रभात फेऱ्यांनीं' मुंबई जागी होत असे. त्यावेळीं खिस्ती स्त्रियांचीहि एक प्रभात फेरी निघे, लक्ष्मीबाईंनीं ह्या प्रभात फेरीसाठीं गाणीं रचवीं, व प्रभात फेरींत जाऊन तीं म्हणावीं. पहिल्याच दिवसाची हकीगत ताराबाईंनीं एका पत्रांत दिली आहे. “रविवारीं सकाळीं आमची प्रभात फेरी फार यशस्वी झाली. एकंदर २४ २५ जणी होतो आम्ही. पुरुष मंडळीहि येऊं म्हणते आहे. पण सुव्यवस्थितपणें पुरी जुळवा-जुळव करीपर्यंत आमच्या आम्हीच हें काम करणार आहों.” ह्या प्रभात फेरीच्या गाण्यांपैकीं कांहीं येथें दिली आहेत.

—

## तुजवर सारा जीव

( अंजनीगीत )

सोडूं व्यसनें तोंडूं बंधन । मातृभूमिला करुनी वंदन  
 शपथ वाहुनी सांगूं तिजला । तुजवर सारा जीव  
 व्यसनापायीं किती बुडाले । थोर सान ते ठार जहाले  
 वळवुनि त्यांना आणुं शुद्धिवर । तुजवर सारा जीव  
 कां गे बसशी मौना धरुनी । कंठ दाटला अश्रु नयनीं  
 हा सत्याग्रह सांग कुणास्तव । तुजवर सारा जीव  
 सांग सांग तूं अपुले हेतू । सोडुनि अभिमति अवघे किंतू  
 आजवर जरी भटकत फिरलों । तुजवर सारा जीव

मुके बोल मे तुझे कळाले । जे होते हृदयीं दडलेले  
 असुनी देशी तरि परदेशी । आमुचा सारा जीव  
 पोटासाठीं वणवण फिरती । दीन पंगु जे दारोंदारीं  
 उचलुं त्यांना देउनि प्राणा । तुजवर सारा जीव

( बां. मे. सप्तबर १९३० )

— —

## कारागृह

( महात्मा गांधी व इतर पुढारी कारागृहांतून सुटले त्या  
 वेळीं रचलेलीं गाणी, )

( चाल:- अजि म्या ब्रम्ह )

खरोखर राष्ट्र पुढें आलें । खरोखर राष्ट्र पुढें आलें  
 कारागृहिच्या अंधाराला, असंख्य किरणीं दीपविण्याला  
 पुढें जाहलें । खरोखर राष्ट्र पुढें आलें-धृ०

अंधाराची रजनी गेली । स्वातंत्र्याची उषा पातली  
 पक्षिगणासम जिकडे तिकडे गाउं लागलें  
 राष्ट्र देवि ही प्रसन्न चिर्ती । सहस्ररश्मी पाहुन पृढती  
 कुरवंडी त्या करण्या हातीं । पंचप्राण धारिले

— —

२

कारागृहिच्या रम्य स्थलाला रामराम अमुचा  
 न्यायनीतिचे माते तुजला रामराम अमुचा धृ०  
 हे कानूंचें जाळें विणुनी, मार्गावारि पसरीलें  
 पाय टाकि जो कोणी त्यावर, कारागृहिं त्या नेलें  
 शंभरजण राहती ज्या स्थळीं मुंगिस नच शिरकाव  
 काय वानुं त्या स्थळ महतीला देउं कय त्या नांव  
 अहा हेंच स्थल पाजी पाणी एकच मडक्यांतून  
 जाती गोती कुठल्या येथें जातिल मृत होऊन  
 कलागृह करी लक्ष्मीपतिचा भिक्षाधीश इथेंच  
 इथेंच शिकती नम्रपणा नी सेवाधर्म खराच  
 गृहदारांचा त्याग करोनी कारागृहिं जे गेले  
 धन्य महात्मा धन्य नेहरू शिष्य त्यांचे झाले

## बिरडें सोडा

( चाल:- चंद्रकांत राजाची कन्या )

हिंदमाय ही गाय अभागी फोडी हंबरडा  
 खिस्ती जन हो चला पुढें व्हा हें बिरडें सोडा  
 दडपशाहिचा फांस लागला, सुरा असूरीचा  
 तिच्या कारणें नाश जहाला अपुल्या राष्ट्राचा

घरोघरीं ही करा पेरणी ग्रेऊं घा पीका  
 व्यसनापारीं देश बुडला, दारिद्र्या देखा  
 तोडा बंधन करा मोकळी हंबरते गाय  
 व्यसनं सोडा पदर पसरुनी विनवीते माय  
 ( ज्ञानोदय ऑगस्ट १४, १९३० )

## स्मरा आपुल्या गुरुवरा

( चालः— चला चला झणि पद उचला )

घर हें अपुलें स्वच्छ करा  
 गुरु-मंत्र धरा, उपदेश करा. धृ०  
 सत्य वदाया भीती नाहीं,  
 खऱ्या संगतीं ईश्वर गाही,  
 अभिमानाला दूर करा  
 गुरु मंत्र ध । । उपदेश करा  
 मदिरापानें नको नाचणें  
 मन देवाच्या ठायीं रमणें  
 प्रभू सांगतो सत्य धरा  
 गुरु-मंत्र धरा । उपदेश करा  
 स्वदेश प्रेमी मोशे\* झाला  
 स्वजनांसाठीं खपला झटला

लढे किती हा वीर खरा\*  
 गुरु-मंत्र धरा । उपदेश करा  
 स्वदेश-प्रेमी शास्त्राधारी  
 स्वजनां साठीं श्रमली भारी  
 मनिं प्रेम वरा हे ध्येय धरा  
 गुरु-मंत्र धरा । उपदेश करा  
 देशासाठीं येशू रडला  
 किती अंतरीं तो कळवळला  
 स्मरा आपुल्या गुरुवरा  
 गुरु-मंत्र धरा । उपदेश करा

( ज्ञानोदय ४ स १९३० )

## पुढें सरणार !

( चालः-- तूं टाक चिरुनी ही मान )

नच हिंद पुत्र डरणार । पुढें सरणार  
 जशी शक्ति तसें करणार । पुढें सरणार, धृ०  
 राष्ट्राच्या चौफेरांत । वणवा हा भडके आंत  
 विझविण्या जीव देणार । पुढें सरणार

\*मिसरांत दास्य भोगीत असलेलें आपलें संपूर्ण यहूदी राष्ट्र मोशाने परत पॅलेस्टाईनमध्ये आणलें.

अग्नीच्या भेखर ज्वाला । ग्राशिती नर्भेंच्या काळा  
 बघुनि कां वीर डरणार पुढें सरणार  
 स्वातंत्र्य भरतभूमीनें । जें कडे घेतलें तान्हें  
 बेमान कसे होणार । पुढें सरणार  
 कुणि देउं वित्त चित्ताला । कुणि देउं देह देशाला  
 कुणि देवा आळविणार । पुढें सरणार  
 ये धाव जगाच्या नाथा । तूंच होइ अमुचा नेता  
 मग नाहिं कधीं हरणार । पुढें सरणार

( ज्ञानोदय २१ ऑगस्ट १९३० )

## जागा रे

( चाल:- शेवटीं प्रभुगाथा )

जागा रे जागल्यांनो । हुशियार रे मागल्यांनो. धृ०  
 दुरुनी माल आला । जीव त्यानें तुमचा भुलला  
 रुक्याचा टक्का झाला, । पैसा वाहूनीया नेला  
 गृहिची गेली वाटी । कांच आली तुमच्या हातीं  
 तिचाहि चूर झाला । पैसा वाहूनीया नेला  
 वस्त्र हें परदेशी । मउ लागे म्हणुनी घेशीं  
 देह हा सजवीशीं । परक्याला धनि बनवीशी  
 सोन्याचें नाणें गेलें । पितळेचें हातीं आलें

कलाहि लया गेली । मजुरी ती आलि कपाळीं  
जुनें तें सारें गेलें । परक्याचें धन तें झालें  
नाश रे नाश झाला । आतां तरी उघडी डोळा

## वंदे मातरम्

( कव्वाली )

ऊठ जीवा, प्रार्थि देवा, बोल वंदेमातरम्  
चालतांना हाच चालो मंत्र वंदेमातरम्. धृ०  
येशु पार्थि ठेवि डोई बोल वंदेमातरम्  
घट्ट त्याचा हात धरुनी बोल वंदेमातरम्  
कार्य करितां जन्मभूचे घोष वंदेमातरम्  
शुद्ध भावें शुद्ध गावें मंत्र वंदेमातरम्  
मातृभूचा मंत्र सोपा बोल वंदेमातरम्  
ऐक्य राहो भेद जावो बोल वंदेमातरम्  
देशसेवा हा विसांवा मंत्र वंदेमातरम्  
राष्ट्र गाई हेंच आतां शद्ध वंदेमातरम्

( ज्ञानोदय २३ एप्रील १९३१ )



## ॥ खिस्तायन ॥

[ पतिनिधनानंतर लक्ष्मीबाईनी खिस्तायनाचें अपुरें राहिलेलें काम बहुतेक पुरें केलें. बहुतेक म्हणण्याचें करण शेवटला अध्याय लिहिण्याचे काम मला करावे लागलें. लक्ष्मीबाईनीं लिहिलेल्या ११ ते ७५ अध्यायांतून थोड्याशा ओव्या प्रो. भवानी-शंकर पंडित, डॉ. वि. मि. कोरुते, इंदूरचे श्री. रा. अ. काळेले व यवतमाळचे रा. वा. ना. देशपांडे ह्यांच्या सहाय्याने निवडून येथें घेतल्या आहेत, ]

अ. ओ.

१२ ४१

४२

६८ ते ८६

प्रभु दर्शनीं प्रेमलहरी । उचंबळती सन्तांतरीं । उष्णा-  
 श्रूंच्या, चरणांवरीं । अर्पिते मरी मुमुक्षु ते ॥४१॥  
 विश्वासाच्या मोतियाला । आशा हाची दोरा झाला ।  
 श्रमसौंदर्ये गुंफियेला हार अर्पिला बालार्का ॥४२॥  
 हेरोदाचे मन बावरले । मुमुक्षु कां न अजुनी  
 आले । कळेना ते वाट चुकले । अथवा झुकले कुठे  
 तरी ॥६८॥ व्यामोहाची घन अंधारी । हेरोदाते  
 गिळी पुरी । कूट भरले जे अंतरीं । फुटुन भीतरीं  
 वाट काढी ॥६९॥ दुष्टतेचा धरुनी हात । नृप हेरोद  
 जन्मा येत । आप्त जनांचा रक्तपात । करी घात  
 इतरांचा ॥७०॥ दिव्य बालका शोभू कसे । हेरो-  
 दाला लागे पिसें । जेथे तेथे तोचि दिसे । मार्ग न  
 गवसे त्या कांहीं ॥७१॥ खल नृप योजी निज मनांत ।  
 वेथलहेमीं आसमंत । दोन वर्षांचे वा आंत । पुत्र होते  
 ते वधावे ॥७२॥ राजा सोडी हुकुमांतें । दूत झेलिती  
 नृपशब्दातें । विसरोनीया मानवतेतें रूपणातें  
 आचरती ॥७३॥ राजा बोले हाले दळ । तयां  
 कशाचा ताळमेळ । खवळले जणुं कर्दन काळ । होत  
 विव्दळ प्रजाजन ॥७४॥ सैरावैरा खल धांवती ।  
 ऐकेकांच्या गृहीं शिरती, काळ कृतांत ते भासती  
 माता बघती शून्य मने ॥७५॥ वदती कीं हा प्रभं  
 जन । सुटला दुर्धर महा दारुण । कोमल बालांकु  
 रावरून । प्राण हरण करुं पाही ॥७६॥ वृत्ति बाळांच

ओ. निष्पाप । आपपराचें न शिवे पाप । मान अवमा-  
नाचा ताप । आपोआप दूर सरे ॥७७॥ शुद्ध  
सात्विक बालक मन । तया पीडावया दुर्जन । कशास  
येती परी धांवुन । हें न आकळे जनतेला ॥७८॥ हातीं  
सुरा हा धोरचा । मनीं ध्यास निज स्वार्थाचा ।  
योग आपुल्या बढतीचा । हात सुन्याचा दाख-  
विती ॥७९॥ करिती कोणी शिशु स्तनपान । कोणी  
दोलीं निजती न्हाउन । रांगत येतां कुणी दुरून ।  
खल धावुन त्या घरिती ॥८०॥ कोणी पडती बाळां-  
वरी । तयां नेती कुणि अंधारीं । कोणी घेउनि पळती  
दूरी । सोडिती परी न चांडाळ ॥८२॥ कुणी  
झांकिती पदराखालीं । कोणी मुखीं मुखां घाली ।  
कोणी बाळा वरी तोली । बदति साउली अमुची  
ही ॥८३॥ म्हणती घ्या घ्या अमुचे प्राण । अमु-  
च्या प्राणां द्या जिवदान । देऊं प्राण मोकलून । ते  
फत्तर न परि फुटती ॥८४॥ घोर माजला आकांत ।  
न सोडिती ते परी कृतान्त । “बालचमूचा करूं  
अंत । आतां त्वरित” खल म्हणती ॥८५॥ एकेक  
ओढोनि घेई बाळ । चरचरा चिरी कंठनाळ ।  
यिर्मयाची वाणी सकल । पुरती खल ते करिती ॥८६॥

९६, ९८,

१००, १०१

१०२,

— एक पाय प्रासादांत । दुजा पडला शवगेंत ।  
राज तृष्णा परि न सोडित । सदा उरांत पेट-  
लेली ॥९६॥ बाळ वधाची समाप्ती । दे तयाच्या

चिर्त्तीं शांती । वदे आतां कसली भीती । न कल्पान्तीं  
 उरलेली ॥९८॥ हेरोदाचा रोग जाई । परी सर्वे  
 काय नेई । घडे जें तें होय अपायीं । लाभ हेई  
 रौरवाचा ॥१००॥ अपकीर्तीच्या मंदिराला । क्रूर-  
 पणाचा कळस चढला । कज्जलाचा गिरी ठेला ।  
 नाम त्याला हेरोद ॥१०१॥ निष्कलंक वाहे रुधिर ।  
 आनंदला निशाचर । प्रवर्तला भ्रष्टासुर । रक्तपूर  
 सोडाया ॥१०२॥

अ. ओ.  
 २९

मार्यामुत म्हणजे येशू आपले प्रेषित निवडतो

४६-५६  
 ५९-६३  
 ६८-८६

एखाद्या देणें असेल दीक्षा । घेती कोणी कोणी परीक्षा ।  
 येशू न योजी रीती ऐशा । देण्या शिष्या दीक्षेते ॥४८॥  
 दीक्षा देण्या शुभस्थान । सुमुहूर्त अथवा शुभदिन ।  
 पाहात न बसे मार्यानंदन । किंवा उघडुन शास्त्र  
 तें ॥४९॥ पूर्व दिवशीं मार्याकुमार । एकांतीं बसुनी  
 गिरीवर । प्रार्थीतसे देव रात्रभर । पळहीभर तो  
 ना थांबे ॥५०॥ देवा होतिल जे प्रेषित । ते होतिल  
 ह्या जगीं बहिष्कृत । तयांस निदीतिल गणगोत ।  
 निंद्य जगांत होतील ॥५१॥ निंदा पर्जन्य पडून  
 त्यावर । संकटांचा येइल पूर । तुटतिल त्यांचे ते  
 आधार । पैल तीर ना तें दिसेल ॥५२॥ तरी कराया  
 तव कार्य । प्रभो घाबें तयांना धैर्य । जणें जरी  
 आचरिलें क्रौर्य । तव कार्य हें न सांगे ॥५३॥

कितीहि मोठे आले संकट । तरी त्या न द्यावी  
पाठ । असें धैर्य द्यावे तया अचाट । व्हावे सुभट  
जगरणीं ॥५४॥ त्यांच्या मार्गीं पडेल अंधार ।  
तयांना मार्ग ना दिसणार । तुजविण कोण दावि-  
णार । करुणासागर हे प्रभो ॥५५॥ ते रहावे निरा-  
भिमानी । असावे लीन तव चरणीं । विश्वासूनी  
तुझ्या वचनीं । रहावे टिकूनी जन्मवरी ॥५६॥

अ ओ.  
९

प्रेषितांत कांहीं विवाहित । कांहीं प्रथमाश्रम आच-  
रित । हें दीक्षेच्या न आड येत । होती प्रेषित  
ते प्रभूचे ॥५९॥ दीक्षेच्या या शुभकार्यास । सृष्टी  
करी बहु आरास । ती उभारी मंडप झकास । दे आकाश  
चांदवा ॥६०॥ उषा गुणी बहुगुणी चित्रकार । मंडपा रंग  
दे मनोहर । वायु झाडून पणें दूर । सभोंवार करी  
स्वच्छ ॥६१॥ जमले सारे द्विजगण भाट । गाळ  
लागते पंचमांत । वृक्षीं वायू वाजंत्रि वाजवित ।  
ये धावत त्वरेनें ॥६२॥ तरुलता न राहती मार्गे ।  
आरासा धावल्या वेगे । पुष्पमाला त्या अनुरागे ।  
स्वअंगें उभारिती ॥६३॥

एखाद्यास मिळतां चिंतामणि । तो कां त्यजील तया  
धरणी । सुग्रास मिळतां भोजनीं । भाकरी कोणी  
न घाली ॥६८॥ येतां तें गिरीचें पठार । थांबला  
मार्येचा कुमार । सर्व प्रेषित, लोक ते इतर । झाले  
स्थिर तेथचें ॥६९॥ प्रेषित, शिष्य व्यापारी । नगर-

वासी आणि शेतकरी । जमले पर्वताच्या पठारी ।  
 निसर्गमंदिरीं देवाच्या ॥७०॥ उपदेशी तयां मार्या-  
 सुत । ऐका ऐका श्रोते समस्त । स्थिर करून आपुलें  
 चित्त । निज मन शांत होईल ॥७१॥ आत्म्याचे  
 असती जे दीन । धन्य धन्य जर्गी होती जन । स्वर्गाचे  
 तयां धारम पूण । जगज्जीवन करील ॥७२॥ धन्य  
 धन्य ते सोरे लोक । जे करिती वा आतां शोक ।  
 तयांना मिळेल सांत्वनसुख । आणि तोख पदोपदीं  
 ॥७३॥ धार्मिकतेची लागली तहान । धन्य धन्य  
 तेचि सुज्ञजन । तयांस मिळेल संजीवन । माना  
 प्रमाण हें वचन ॥७४॥ अंतःकरणीं शुद्ध भाव ।  
 धन्य धन्य तोचि मानव । तो ओळखील पहा देव ।  
 स्वर्ग वैभव तयाचें ॥७५॥ जे करिती दया लोकांवर ।  
 धन्य ते जरी वा पामर । देवदया तयावरी होणार ।  
 निश्चित त्रिवार हें सत्य ॥७६॥ जे असती आतां जर्गी  
 झुदित । पुढें होतील अति दुःखित । तयांस झुक  
 लागेल खचित । असति तृप्त आतां जे ॥७७॥  
 आतां हास्य करितात लोक । तयांस पुढें होईल  
 शोक । आतां आहेत जे जर्गी धनिक । दरिद्रनायक  
 होतील ॥७८॥ जर्ही जनता तुमचा तो छळ ।  
 माझ्यासाठीं अति करील । धन्य व्हाल तुम्ही जर्गी  
 सकळ । तुम्हां मिळेल स्वाराज्य ॥७९॥ निंदा  
 करितील तुमची जन । माना आपणांसी पावन ।

आनंदित व्हा सर्वजण । करा मन उलहासित ॥८०॥  
 पूर्वी झाले संदेशकार । जनें तयां छळिलें फार ।  
 त्यांचे वंशज तोच आचार । आचरणार खचित पै  
 ॥८१॥ जन तुम्हां म्हणतील जें बरे । चिर्ती उमजा  
 तुम्ही तैं सारें । आपण कोठें तरी चुकतों खरें ।  
 सांवरा त्वरें आपणां ॥८२॥ तुम्ही अहां जगाचें  
 मीठ । सदाच लागे खारट । ह्या गुणास लवण दे  
 जरि स्रुट । एतिका होत न कां ते ॥८३॥

अ. ओ. जेथें जेथें जाई खिस्त । तेथें जाती हे प्रेषित कीं  
 २७ २० वस्तुमागुन छाया जात । न सोडित कदाहि ॥२०॥  
 २१ निबिड गाढ अंधारांत । छाया वस्तूंची जोड न तुटत ।  
 खिस्त आणि तयाचे प्रेषित । अबाधित जोड  
 तशी ॥२१॥

अ. ओ. मी चंदनकाष्ठ तूं सौगंध । कमलिनी मी तूं मक-  
 २८ ३ रंद । सेवून तूम हो अलिबुंद । पुरवी छंद हा  
 ४ माझा ॥३॥ खिस्ता तूं प्रकाश जिवंत । मी असें  
 प्रकाशहीन वात । स्पशें करी मला प्रज्वलित ।  
 २९ ५ वितळवी ध्वान्त जगतीचा ॥४॥

जया मिळाला-तुझा संग । ते जहाले पूर्ण अभंग ।  
 ईश भजनीं होती दंग । दूर कां मग मी राहूं ॥५॥













